ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति

दान तथा अन्य कहानियाँ

ऋषभचरण जैन

दिग्दशन चरण जन
नई दिल्ली

प्रथम सस्करण	१९८५
मूल्य	३० ००
प्रकाशक	दिग्दशन चरण जैन ऋषभचरण जन एवम सन्तति २१ दरियागज, नई दिल्ली २ ११ गार्डन रीच, कुलड़ी–मसूरी
मुद्रक	ग्रन्थशिल्पी, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

Daan Tatha Anya Kahaniyan by Rishabh Charan Jain
Price Rs 30 00

प्रकाशकीय

ऋषभचरणजी की कहानियां लम्बे अर्से से अप्राप्य थीं। अन्य झझटों में फँसे रहने के कारण इस ओर ध्यान नहीं दे पाये, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कहानीकार के रूप में उनका नाम विस्मृत होने लगा। कई विश्वविद्यालयों में उन पर शोध कार्य करने वाले शोध-कर्त्ताओं ने इस प्रमाद की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। उस दोष का परिमार्जन करने की दिशा में यह प्रथम प्रयास है। चार खण्डों में उनकी सभी कहानियाँ प्रकाशित करने की योजना है, जिसकी यह प्रथम कड़ी है।

आशा है पाठक और शोधार्थी इनका पूरा लाभ उठावेंगे।

२१ दरियागंज
नई दिल्ली
मार्च १९८५

—दिग्दर्शनचरण जैन

क्रम

दान

१

चन्द्रलाल, रामचन्द ज्योतिप्रसाद और हुकूमतराय चार आदमियो के नाम हैं।

चन्द्रलाल एक घडी की दुकान म बीस रुपए का नौकर है। स्त्री है एक बच्ची है। गुजर-बसर मुश्किल से होती है। कोट बरसो म बदलता है जूता टुकडे-टुकडे हो जाता है, टोपी का खर्च बचाने के लिए नगे सिर नौकरी पर जाता है। रामचन्द, साधारण गृहस्थ हैं। जाति के वैश्य है। कृष्ण के सच्चे भक्त हैं। गीता का नियमित पाठ करते और माथ पर चन्दन पोतकर घर से बाहर निकलते है। अनाज की मण्डी म दलाली करते है। कृष्ण की कृपा से खासी प्राप्ति हो जाती है। घर क लोग खुशहाल है। ज्योतिप्रसाद किसी अर्द्ध सरकारी दफ्तर म हेड क्लर्क हैं। वेतन तीन सौ रुपया है। कपडे रेशमी पहनते हैं। टोपी फेल्ट लगाते हैं। 'अबदुल्ला' का सिगरेट पीते हैं। अक्सर इण्टर म और कभी-कभी सेकिंड क्लास म सफर करते और बीमो रुपया अपने और बच्चो के स्वास्थ्य की खोज म डाक्टर-वैद्या को अर्पण करते है। हुकूमतराय मोटी तोन्दवाले, क्षत्रिय के अपभ्रश खत्री है। छज्जेदार पगडी लगाते है। मक्खन जीन का कोट या रफल का अँगरखा पहनते हैं। दोना हाथो की उँगलियो म कई कई अँगूठिया भरे रहते हैं। चूडीदार पायजामा पहनते है। रेशमी कमरबद हमेशा लटकता दिखाई देता है, और सलीम-शाही जूते या पप शू धारण करते है। अक्सर मोजो का इस्तेमाल भी होता है। आखो म सुर्मा और मुह म पान चौबीसो

रमा रहता है। राय साहब की पदवी प्राप्त कर चुके हैं और ' साहब' की जगह ' बहादुर ' बनने की मन में बड़ी लालसा है।

एक दिन ये चारों आदमी शहर के भिन्न भिन्न भागों में अपने-अपने घर की तरफ चले।

२

रमजू एक भिखारी का नाम है। फटी मी, सब-परिचित गुण्डा आई सड़क के किनारे बैठा है। हाथ-पैर कांप रहे हैं, या कँपाए जा रहे हैं। शरीर जगह-जगह से जख्मी हो गया है। मुह पर घोर दीनता का भाव है। नीचे का होठ फैल गया है। दाँत निकले पड़ते हैं।

चन्दूलाल सामने से निकला, तो रमजू होठ फैलाकर दाँत निकाल-कर चिल्ला उठा—'बाबा एक पैसा ! तेरे बच्चों की खैर !!'

इस आर्त स्वर ने या इस शुभ कामना ने चन्दूलाल के पैर बाँध दिए। जेब में एक ही पैसा था। सोचा था, लड़की के लिए दाल-सेव लेते चलेंगे। अब वह इरादा बदल गया और पैसा जेब में न रह सका। उसने जेब में हाथ डाला और पैसा रमजू की तरफ फेंक दिया।

कँपकँपी क्षण-भर को रुक गई, होठ सिकुड़ गए, दाँत भीतर चले गए। पैसा उठाकर माथे से लगाया गया, और कृतज्ञ कण्ठ से रमजू ने कहा—'दाता तेरा भला करेगा।'

चन्दूलाल आगे बढ़ गया।

'छन' से आवाज हुई, और इस पैसे ने रमजू की थैली में पहुँच कर अपने जाति-भाइयों से मिलने की सूचना दी।

३

यह आवाज विलीन हुई थी कि रामचन्द आ पहुँचे। माथे पर अब तक चन्दन पुता हुआ था। मुह से कृष्ण का नाम निकल रहा था, और मन अनाज की मण्डी में घूम रहा था।

चन्दू का भाव झट बदल गया। होठ फैल गए, दाँत निकल आए, शरीर काँपने लगा और स्वर में वही कातरता आ फूट निकली। हाथ फैलाकर चीख पड़ा—'बाबा, एक पैसा ! तेरे बच्चों की खैर !!'

रामचन्द के कृष्ण-नाम और अनाज की मंडी के चिंतन में कोई व्याघात

न हुआ और वह बिना उधर देखे आगे बढ गया।

रमजू ने सतृष्ण नेत्रो से देखा, और धीरे से कहा—'दाता, तेरा भला करेगा।'

यह वाक्य अभ्यास वश मुह से निकल गया था, या सचमुच उसकी ऐसी इच्छा थी इसे हम नही जानते।

रामचन्द थोडी दूर आगे बढा था कि किसी ने रोक दिया। नजर उठाकर देखा, तो एक जटाधारी सन्यासी। रामचन्द ने अवाक होकर उन्हे ताका और फिर दोना हाथ जोडकर प्रणाम किया।

सन्यासी कर्कश स्वर म बोला— बोल साधू की इच्छा पूरी करेगा?'

रामचन्द सहमकर बोला—'कहिये क्या है महाराज।'

सन्यासी न इधर उधर देखा। सडक पर कोई न था फिर वैसे ही कर्कश स्वर म बोला— तेरे मुह मे कृष्ण का नाम है। सन्यासी की इच्छा तू ही पूरी कर। तेरा कल्याण होगा।'

रामचन्द हाथ जोडकर बोला— कहिए न महाराज।'

'सन्यासी के भडारे के लिए तुरन्त सवा रुपया दे।' सन्यासी ने आखे निकालकर कहा—'तेरी जेब मे है देख अभी निकाल, कल्याण होगा।'

रामचन्द क्षण भर को ठिठका तो सन्यासी ने जमीन पर पैर पटककर कहा—'नही देता? अच्छा ले, जाता हू, याद रख तेरा सर्वनाश हो जायेगा?

रामचन्द एडी से चोटी तक लरज जाता है और सवा रुपया का मोह त्याग देता है।

सवा रुपया लेकर सन्यासी लाल आखे किए आगे बढता है।

४

रमजू अपनी टेर शुरू करता है—'बाबा, एक पैसा। तेरे बच्चो की खैर,'

अब ज्योतिप्रसाद आए। फेल्ट तिरछी हो गई है। रेशमी कोट के बटन खुल गए है। कमीज भक-भक कर रही है। पतलून की 'क्रीज़' कुछ बिगड गई है। बूट अभी-अभी रूमाल से साफ किए गए है। सिगरेट से धुआ निकल रहा है।

रमजू की टेर कान मे पडती है, तो थम जाते है। क्षण-भर विचित्र दृष्टि से इस दीन भिखारी की तरफ ताकते रहते है, फिर कहते है—'अरे, तू क्यो भीख माँगता है ?'

रमजू उसी तरह दाँत निकालकर कहता है—'बाबा पेट !'

पेट ? पेट किसके नही है ?—हमारे भी तो है। हम तो भीख नही माँगते ! तू जो मक्कारी करके यहाँ अपाहिज बना बैठा है, इससे क्या फायदा ? अरे उठकर हाथ पाँव चला, और कमाकर खा, यह तो परले सिरे का कमीनापन है ! समझा ? तुम लोगो ने इस मुल्क की हालत बहुत खराब कर रक्खी है !'

रमजू मुह बाए सब सुनता रहा कि अन्त म कुछ मिलेगा। पर जब लेक्चर और विरक्तिपूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त कुछ न मिला और बाबू साहब चल दिए, तो उसकी निराशा का ठिकाना न रहा। तब भी उसके मुह से निकला—'दाता तेरा भला करेगा !'

ज्योतिप्रसाद आगे बढे। सामने से वही जटाजूटधारी सन्यासी आ रहा था। पुष्ट शरीर, चेहरा खिला हुआ, गेरुआ वसन और लाल लाल आँखें ! देखते ही ज्योतिप्रसाद की त्योरी चढ गई। आप ही-आप बोले—'एक यह और आया पाजी !'

सन्यासी ने तीव्र नेत्रो से ज्योतिप्रसाद पर दृष्टिपात किया पर त्योरी चढी देखी, तो दृष्टि की तीव्रता का लोप हो गया। पास आकर नर्मी से बोला—'बाबू !'

ज्योतिप्रसाद ने कडककर कहा— क्या है बे ?'

सन्यासी की घिग्घी बध गई। लडखडाती जीभ से बोला—'बाबू, भूखा हूँ।'

ज्योतिप्रसाद चिल्ला उठे—'भूखा है, तो साले, क्या मुझे खायगा ?—जाकर कुएँ म डूब मर !'

और वह आगे बढ गए। सन्यासी भी अपना-सा मुह लिए चल दिया।

ज्योतिप्रसाद चले। अपने इस निरर्थक क्रोध पर मन कुछ विषण्ण हो गया। सन्यासी की स्थिति पर कुछ दया भी आई, और उसी वक्त

भिखारियो क पक्ष म उनक मस्तिष्क ने कई मौलिक युक्तियो की सृष्टि कर डाली।

घर पहुँचते-पहुँचते वह क्रोध भी विपण्णता भी और वे युक्तिया भी, सब-कुछ लुप्त हो चुका था।

वठक म तीन चार सज्जन उपस्थित थे। सबके शरीर पर खद्दर के वस्त्र और चेहरो पर नई तरह के भाव थे। सब बैठक म वठे आपस म हँसी दिल्लगी कर रहे थे। ज्योतिप्रसाद पहुँचे कि सबका भाव बदल गया जस सूरज के आगे वादल आ गया, और खिली धूप की जगह पलक मारते छाया हो गई।

थोडा-बहुत परिचय तो सभी से था पर जगन्नाथ घनिष्ठ थे। हँसकर बोले—'जनाब की इतजारी मे दरे-दौलत पर हाजिर है।'

ज्योतिप्रसाद आसीन होकर बोले—'कहिए, क्या हुक्म है?'

जगन्नाथ दात निकालकर बोले— इस महीने की तनख्वाह छीनने आए हैं।'

ज्योतिप्रसाद सहमकर बोले—'क्या?'

'हा जी, बाबू बिहारीलाल अब बोलो न।' जगन्नाथ न अपने निकटस्थ साथी से कहा।

बिहारीलाल ने गाधी-कप सरकाकर कई बार मुह का भाव बदला, फिर ऊपर का होठ नाक की नोक से छुआया और कुछ बढिया रसीद-बुकें और कुछ हड बिल खद्दर क बस्त से निकालकर मेज पर पटक दिए। एक हैड बिल ज्योतिप्रसाद के हाथ म दे दिया गया। शीर्षक था—'भयङ्कर आघात!' फिर छोटी सुर्खी मे था— हिन्दू-धम खतरे म!' इसके नीचे और छोटे टाइप म छपा था— लाखो अनाथा की रक्षा का आयोजन—हिंदुओ से अपील।'

देव नागरी का निम्नलिखित पद्य देकर बात शुरू की गई थी—

हिन्दू जाती आज जाती है रसातल को सुनो
लाखो बच्चे भ्रष्ट होते उनकी कहानी को सुनो।'

फिर उस लम्बे हैंड-बिल म बहुत-सी बातें लिखी हुई थी। उपयुक्त पद्य का माधुय लूटकर और हैंड-बिल के घोर अशुद्ध वक्तव्य को समाप्त

करके, ज्योतिप्रसाद बोले—'स्कीम तो अच्छी है!'

जितनी देर में हैंड बिल खत्म हुआ, सबकी नज़र उनके चेहरे पर जमी रही। अब यह बात सुनकर जैसे सब-के-सब पानी का छींटा खाकर जाग उठे और हर्षित होकर एक साथ बोले—'जी, यह तो आशा ही थी आपसे।'

ज्योतिप्रसाद ने कोशिश करके मुँह की मलिनता छिपाई और कहा, 'आप लोगों का साहस प्रशंसनीय है।'

बिहारीलाल बोले—'जी, देखिए, आज लाखों की तादाद में अनाथ बच्चे विधर्मी हो रहे हैं। (ज्योतिप्रसाद ने अतिशयोक्ति पर ध्यान न दिया और मुँह की मलिनता छिपाने के लिए सिर हिलाकर समर्थन किया।) ईसाई और मुसलमान इन बच्चों की खोज में मुँह-बाए फिरते हैं, और अन्त में उन्हीं की मदद से हमारे पवित्र धर्म पर कुठाराघात करते हैं। अगर हमारे पूर्वज इस बात का खयाल रखते, तो आज भारत में विधर्मियों की इतनी संख्या कभी न होती। (मलिनता का भाव छिपाने में कुछ-कुछ सफल हुए हैं इसलिए ज्योतिप्रसाद बराबर समर्थन-सूचक सिर हिलाए जा रहे हैं।) आज हमारे अनाथ बच्चों की जैसी दुर्दशा हो रही है उसे देखकर किस हिन्दू की छाती फट न जाएगी? किसका हृदय हाहाकार न कर उठेगा? किसका

बिहारीलाल ने कब अपनी स्पीच समाप्त की, ज्योतिप्रसाद को इसका होश नहीं। जैसे रेल ठहरने पर नींद खुल जाती है वैसे ही बिहारीलाल की स्पीच का प्रवाह रुकने पर उन्हें होश आ गया। जगन्नाथ हँसते हुए कह रहे थे—'कहिए कुछ समझे?'

ज्योतिप्रसाद सिटपिटाकर बोले—'जी हाँ, ठीक है—बड़ी अच्छी बात है!'

बिहारीलाल ने 'डोनेशन-बुक' खोलकर उनके आगे रख दी, पेंसिल हाथ में थमा दी और खुद रसीद बुक लेकर फाउंटेन पेन खोलने लगे।

ज्योतिप्रसाद बोले—'क्या हुक्म है?'

बिहारीलाल ने गिड़गिड़ाकर कहा—'अजी वाह! मैं क्या हुक्म चलाऊँगा, मैं तो आपका सेवक हूँ!'

जगन्नाथ ने हँसकर बेतकल्लुफी से कहा—'आपके पास 'अपील' करने मे हमारा उद्देश्य यह है कि कम-से कम आपकी एक महीने की तनख्वाह हडप कर जाएँ।'

ज्योतिप्रसाद के मुख पर जैसे सकट का भाव उदित हुआ, उसे देख कर आपको दया आती और अनाथाश्रम के 'डेपुटेशन' पर हँसी छूटती।

ज्योतिप्रसाद ने पन्ने पलटकर 'डॉनेशन-बुक' का निरीक्षण किया, फिर थोडी देर सोचते रहे, और फिर कलजे पर पत्थर रखकर लिख दिया।

जगन्नाथ न खूब हाथ पैर मारे, पर पच्चीस रुपये स एक कौडी ज्यादा न लिखी गई।

५

दो बार खाली जा चुके थे, इसलिए रमजू ने टेर के स्वर म वद्धि की—बाबा, एक पैसा तेरे बच्चो की खैर।'

रायसाहब हुकूमतराय आते नजर पडे। छज्जेदार पगडी की बहार दखने काबिल थी। रफल का अगरखा उडकर भागा जाता था। चूडीदार पायजामा खूब कसा हुआ था। सलीम शाही जूते और मोजे अलग फशन दिखा रह थे।

रमजू ने इरादा कर लिया कि दोना वरग दाताओ की कसर इस एक से निकालूँगा। दूर से देखा, और चिल्लाने लगा—'बाबा, तेरे बच्चा की खैर कुछ देना।'

इस बार टेर मे परिवतन कर दिया, क्योकि एक पैसे से ज्यादा की आशा और अभिलाषा थी।

हुकूमतराय एक-एक कदम रखते आगे बढे। माथे की शिकन से मालूम हाता था कि किसी गहरी चिन्ता मे हैं। ऐसा जान पडता था कि किसी ने उन्हे छेडा, तो बरस ही पडेंगे। पर रमजू को इतनी अक्ल होती, तो भीख क्यो माँगता? उसे तो बस एक पैसे ज्यादा की धुन थी। उनका एक एक कदम पडता था, और उसके दिल पर जसे चोट पडती थी। हरएक कदम पर या हरएक चोट पर आवाज भी तेज होती जाती थी।

सामने आन मे तीन कदम की दर थी। रमज गला फाडकर चिल्लाया—'बाबा, तेरे बच्चा की खैर ,!'

दो कदम रह गए। रमजू आगे सरक गया। आवाज फिर निकली—'बाबा, तेरे बच्चो ।'

एक ही कदम रह गया था। रमजू की आँखें निकल आइ। पूरा जोर लगाकर बाला—'बाबा, तेर ।'

हुकूमतराय ठीक सामने आ गए। उडती नजर से एक बार चीखत हुए भिखारी को देखा। विचार शृखला म बुरी तरह बाधा डालन वाले इस नाचीज पर क्रोध तो बहुत आया, पर पी गए।

वह पिया हुआ क्रोध माना अभागे भिखारी न बाहर उगलवा लिया। क्या किया ? जब हुकूमतराय न आगे कदम रखा, ता आवग म भरकर उसने उनका पर पकड लिया। मुह स बोला—'बाबा, तेरे ।'

हुकूमतराय गिरते गिरते बचे। वह पिया हुआ क्रोध वापस आ गया, और सारा शरीर आवेश के कारण एकबारगी भनभना उठा। उस नाचीज की इतनी हिम्मत! पहले ता उस कीमती विचार वाटिका का सत्यानाश मार दिया, फिर फिर ऐसे अपमान के साथ सबोधन करता है! और पाजी की यह हिम्मत कि पैर पकड लिया ।

यह सब विचार भयानक वेग के साथ पलक मारते दिमाग म घूम गए। हुकूमतराय की आखो से चिनगारियाँ 'छूटने लगी। आँखें काढकर और दाँत पीसकर उन्होंने पीठ फेरी। रमजू आशा और भयपूर्ण नत्रो स ताक रहा था। पर उनका तो विवेक नष्ट हो चुका था, उसके कातर भाव को लक्ष्य करने लायक भावुकता उनमे कहाँ से आती ? शरीर में जसे ज्वाला भर गई! उन्होंने पूरे वेग से एक लात रमजू पर चलाई और पास से एक पत्थर का टुकडा उठाकर उसके सिर पर दे मारा।

रमजू की पहली चीख हवा मे विलीन हो गई! फिर वह दहाड मारकर रो उठा। सिर स खून की मोरी सी बह निकली। लात की चोट भी पूरी बठी थी।

हाथ पर का काम खत्म हुआ, तो मुह का शुरू हुआ। गन्दी-स गन्दी गालिया की बौछार सी होने लगी।

रमजू घाव और मार की पीडा से चीखता था, रोता था और हाय-हाय करता था। आस पास इतनी भीड इकट्ठी हो गई थी, पर कोई माई का लाल उसका पक्ष लेकर हुकूमतराय से जवाब तलब करनेवाला न था। जो लोग रायसाहब के परिचित थे, वे उनसे प्रश्न कर रहे थे, उन्हे शात कर रहे थे, और उनके क्रोध का अतिरजित कारण जानकर असहाय रमजू पर रोष प्रदर्शन कर रहे थे।

जब ज्यादा भीड इकट्ठी होती देखी, और क्रोध का खासा स्खलन हो चुका, तो रायसाहब आगे बढे।

बिलखते हुए रमजू की तरफ किसी का ध्यान न था। सब के-सब आश्चर्य की मूर्ति बने, सहमे से, आतक-पूर्ण रायसाहब को निहार रहे थे।

रामचन्द्र से सवा रुपया ऐंठनेवाला और ज्योतिप्रसाद की झिडकी खाने वाला सन्यासी भी चुपचाप भीड में खडा था?

घर थोडी दूर रह गया था किसी ने आवाज दी 'रायसाहब !'

रायसाहब ने पीछे फिरकर देखा—अनाथाश्रम का डेपुटेशन! आवाज देनेवाला जगन्नाथ था। रायसाहब से भी उसका साधारण परिचय था। उसी बल के आधार पर उसने आवाज दी थी।

रायसाहब थम गए। डेपुटेशन के लोग गर्दन झुकाए, खद्दर के कुरता की सीवन को टटोलते हुए आगे बढे। एक के हाथ मे हैंडबिल थे, दूसरे ने रसीदबुकें ले रखी थी, तीसरे के पास थैली और डॉनेशन-बुक थी। जगन्नाथ खाली हाथ था।

रङ्ग-ढग देखकर रायसाहब ने बहुत कुछ अनुमान कर लिया। गुस्सा अभी पूरी तरह शात नही हुआ था। यह नए हमले की तैयारी देखी, तो त्यौरी मे बल पड गए। फिर भी थमे रहे।

डेपुटेशन पास आया। सब ने हाथ जोडकर अभिवादन किया। माथे की त्यौरी नष्ट किये बिना ही रायसाहब ने सिर हिलाकर अभिवादन का उत्तर दिया। डेपुटेशन कुछ शकित हुआ।

जगन्नाथ ने कहा—'कहिए, आपका मिजाज तो अच्छा है ?'

रायसाहब कुढकर बोले—'जी हाँ, आप इधर कहाँ चले ?'

जगन्नाथ ने देखा—रंग बढ़ग है। नरमी की नदी मे डूब कर बोला—'आप ही के दौलतखाने पर कल्म-बामी के लिए हाजिर होनेवाला था।'

रायसाहब तब भी बे-तकुल्लुफी पर न आए। घुड़ककर बोले—'मेरे ?क्या, मुझसे क्या काम था ?'

जगन्नाथ बोला—आप तशरीफ ले चलिए, वहीं चलकर बताऊँगा।

रायसाहब अनखाकर बोले—'आप कहते चलिए, घर पर तो मुझे मरने की भी फ़ुरसत नहीं रहती।

जगन्नाथ ने इस अपमान का कतई न गरदानकर कहा—'अच्छा, तो बात यह है ।'

उसने बिहारीलाल की तरफ देखा। एक हैंड बिल रायसाहब की तरफ बढ़ा दिया गया।

हैंडबिल उन्होंने न लिया। मोटी सुर्खी पर दूर से ही नजर डालकर बोले—'क्या है यह ? जबानी फर्माइए मुख्तसिर ।'

जगन्नाथ ने बिहारीलाल की तरफ देखा, और कहा—'जी, लीजिए, आपसे परिचय करा दूं। आपका नाम '

रायसाहब टोककर बोले—'मतलब की बात कहिए न, मुझे देर हो रही है।'

'बिहारीलाल के मुंह पर हवाइयां उड़ने लगी।'

जगन्नाथ बोला—'जी, एक अनाथाश्रम की स्कीम है। आप जानते है, आजकल लाखों बालक ।'

रायसाहब जल उठे। पहले कोई कड़ा उत्तर देना चाहते थे, फिर जगन्नाथ का मुंह देखकर रह गये। बोले—'क्या चन्दे के लिए आए है ?'

जी, आपकी सम्मति भी लेनी थी। और चन्दा तो आप ही जैसे ।'

'आप फिर किसी वक्त मिलें। जो मुनासिब सलाह मैं दे सकता हूँ, दूंगा।' कहकर रायसाहब एकदम चल दिए। डेपुटेशन भी वापस फिरा।

अब बिहारीलाल न गम्भीरता की चादर उतार फेंकी, और हँसकर कहा—'साला है बडा घाघ।'

अब सबका रूप अकस्मात् बदल गया, और पाँच मिनट बाद दूसरे शिकार की खोज होने लगी।

उधर रायसाहब हुकूमतराय घर पहुँचे। खूब ठाठ का घर था। घर क्या महल समझो। देखते ही नौकर चाकर दौड पडे। जूता उतारते हुए एक नौकर ने कहा—'सरकार कमिश्नर साहब का चपरासी आया था।'

क्यो?' कहकर रायसाहब एक साथ उछल पडे।

एक चिटठी दे गया है, दफ्तर म रखी है।'

रायसाहब नगे पाँव उधर दौडे। चिटठी खोलना दुश्वार हो गया। खूबसूरत लिफाफे म मोटे कागज पर छपा हुआ एक सकुलरनुमा पत्र था। नीचे चीफ-कमिश्नर के हस्ताक्षर थे।

था क्या? रायसराय ने बादशाह के अच्छे होने की खुशी म 'थक्स-गिविग फड' खोला है। उसी की सूचना इस चिट्ठी द्वारा रायसाहब हुकूमतराय को दी गई है।

इस छपी हुई चिटठी को रायबहादुरी के स्टेशन का टिकट समझकर रायसाहब उसी वक्त एक हजार रुपए का चक 'थक्स गिविग फड' म भेजने की व्यवस्था करने लगे।

भय

किसी भेदिए ने भेद दिया और दुश्मनो ने दुश्मनी निकाली।

अभी चार वर्ष गौने को हुए थे पर जरा सी तकरार हुई कि मानिक फौज में भर्ती होकर विलायत चला गया। तरुण देवर अभी कुआरा था। मालिक होता तो इस साल मनभरी अपनी छोटी बहिन को भी इसी घर में ले आती, परन्तु भाई के पीछे देवर ने ब्याह करने से एकदम इन्कार कर दिया।

दीवान अपनी याद में एक छोटा बच्चा मनभरी की गोद में छोड़ गया था। उसकी नजर में वही लाल था और वही कुअर। देवर भाभी की आँखों का तारा दुलारा वही बालक था। भैंसें दुहकर, खेत जोतकर, मिन्ना बिनकर, ढोर चलाकर दोनों सुख से दिन बिताते थे, और लड़ाई खत्म होने की बाट देखते थे। मास में दीवान की चिट्ठियाँ अक्सर आया करती थी।

किसी भेदिए ने भेद दिया और दुश्मनो ने दुश्मनी निकाली।

देवर उस दिन कालका जी के मेले में गया था मनभरी घर में अकेली थी। कुआर खत्म हो रहा था, रात जड़ियाने लगी थी, मनभरी ने तीनों भैंसों का दूध काढ़कर उन्हें बाड़े में बन्द किया, भीतर से आगल लगाया, और इधर उधर देख भालकर छौने को गले में लगाकर सो रही।

चौके में आगे बरामदा था, और उसके पीछे कोठा। मनभरी ने बरामदे में खाट बिछाई थी। चाँद हँस रहा था। रात में मस्ती थी। दिन भर जी तोड़ मेहनत की थी। पड़ते ही उसे नींद आ गई।

किसी आवाज से उसकी नींद टूटी। दिन भर की बातें ताजी थी,

—

आखो मे पूरी नीद धँसी भी नही थी—जसे सोये ज्यादा दर नही हुई। उसने आख फाडकर देखा—चौक म चांदनी चिटक रही है। कही कोई नही। क्यों उसकी नीद टूटी ?

अक्स्मात् उस अँधेरे कोने म कोई छिपा हुआ दिखाई दिया, उधर उसमे भी—छत पर भी कोई है ! मनभरी का दिल जोर स धडक उठा, उसने ऊपर का वस्त्र उतारकर फेंक दिया, और अस्त-व्यस्त धोती को क्रम म किया।

तव छत के आदमी चौक म कद और कोने वाले उनम मिल गए। सब पांच थे पर मनभरी को दजनो दिखाई दिए। उसने एक हल्की चीख मारी, और दौडकर कोठे म घुस गई। साँकल उसने भीतर स बद कर ली।

जी उछला जा रहा था। पहले उस सम्हाला, फिर चिल्लाकर वोली—'खवरदार।'

घर उसका गाँव के पिछले पासे था। फिर कोठे म वद थी। अगर जी खोलकर चिल्लाती, तो भी कौन सुनने वाला था।

आततायी लोग उसकी खाट के पास आ गए। दो ज़रा पीछे ठिठक गए। तीन आग वालो ने कुछ फुसफुसाया। इतने म 'खबरदार।' सुनकर तीना एक कदम पीछे हट गए। किसी ने कहा—'कोठे म घुस गई।' पीछे वालो म से एक ने कडे स्वर म कुछ कहा। फिर एक क्षण के लिए मौत का सन्नाटा।

मनभरी की हिम्मत बँध सी गई थी। उसने फिर कडककर कहा—'कौन है।'

आग वाला मे म एक वोला—'ताली दे दो।'

ताली कहाँ हैं ? इस झोपडी म रक्खा क्या है ?'

पीछे स फिर किसी का कुछ आदेश पाकर उसने कहा—हम सव-कुछ मालूम है ताली द दो।

'यहाँ कुछ नही है, जाइय।'

'वक्स कहाँ है ?'

'वक्स ?—वक्स तो यह है मर पास।'

'कोठा खालकर बाहर आ जाओ, हम देख लेंगे।'

'यह नहीं होगा।'

'कैसे नहीं होगा।'

मनभरी ने जवाब भी न दिया था, कि पीछे वाला में से एक आगे बढ़ा और किवाड़ों पर जोर से लात मारकर गजा— खोल किवाड़!'

मनभरी का दिल डब-सा गया। पर किवाड़ हिले तक नहीं।

गोयान ने बड़े शौक से जोड़ियाँ चढ़वाई थीं, गाँव भर में जिनका सानी नहीं था। साँकल और आगल भीतर से बन्द था, तो भी मनभरी ने किवाड़ों पर सारा जोर लगा दिया।

फिर लात और फिर 'खोल किवाड़!' पर किवाड़ फिर भी न खुले।

सहसा बच्चा रो उठा, और साथ ही किसी ने कहा—'इस बच्चे को मार डाला जाएगा।'

कहने वाला उन दो में से था, जो पीछे रह गए थे।

किसी ने जसे मनभरी की छाती में घूँसा मार दिया। उसने तिल-मिलाकर इस गजना की सार्थकता का अनुभव किया।

पहले के तीन में से एक ने कहा—'बाहर निकल आ, ताली सौंप दे!'

मनभरी ने थमकर कहा—'क्या उसे मार डालोगे?'

दो ने कहा—'जरूर! जरूर!'

एक ने कहा—'देखता क्या है—भींच द टेंटुआ!'

मनभरी की आत्मा पर चाबुक का सा वार हुआ। बच्चे की चिल्लाहट उस नन्हें से शिशु का तड़पकर मरना, अबोध जीव का मिनट भर में ही मुर्दा बन जाना, उसके मन की आँख के आगे नाच गया! अज्ञात भाव से उसके हाथ आगल पर पहुँच गये। आगल हट गया, साँकल खुल गई, किवाड़ खुलने ही वाले थे, कि पाँचों आततायियों की सूरत भीषण रूप धारण करके उसके सम्मुख आ गई। इज्जत का सवाल था! अकेली औरत क्या करेगी! बेटा बड़ा या इज्जत बड़ी?

उसने सबसे पहले साँकल बन्द की, आगल लगाया, तब हाँफती हुई [illegible]।

रतन म फिर किसी ने कहा—

'हम वक्त नहीं है। निकल बाहर !'

उसका जवाब न पाकर फिर उन्हीं दो में से एक (नायक) ने कहा—

'देखता क्या है बे, घोट दे गला, और फिर तोड दे किवाड !'

मनभरी का दिल खट-खट बजने लगा। शरीर की एक एक नस कांपने लगी। हाथ फिर साकल की तरफ चला। पर वह भीषण रूप फिर सामने आ गया !

उस पहले आदमी ने फिर कहा— तानी दे दे, बाहर आ जा '

पर नायक ने डपटकर चुप कर दिया। बच्चा चीख उठा।

ठहरो ! खूब जोर लगाकर मनभरी चिल्लाई।

धन माल का उसे लोभ नहीं। वह बड़ी खुशी से सब कुछ सौंप सकती है। वे घर से बाहर चले जायें तो छत के ऊपर से वह सब गहना रुपया फेंक देगी। उसे अपनी इज्जत का सवाल है।

इसकी फिक्र न करो ' उस पहले ने फुर्ती से कहना शुरू किया। पर नायक ने फिर डपट दिया।

नायक ही बोला। उसके स्वर म भीषणता थी, और पाशविकता थी।

'हम बहस करने नहीं आए। तुझे अपनी दुर्दशा नहीं मन्जूर, तो किवाड खोल। हमम किवाड खोलने की ताकत है। हम खुद खोलेंगे, और जो कुछ करना होगा, करेंगे।'

इस दैत्य वाणी से मनभरी सिर से पैर तक सन्न हो गई। शरीर पसीने पसीने हो गया।

'बोल, खोलती है ?'

उसने चिल्लाकर कहा—'मेरा बच्चा !'

पर इज्जत का मोल उससे ज्यादे था।

बच्चे का गला घुटना शुरू हो गया था। कातिल अँगूठा नली दबाये जा रहा था।

बेटे का वध हो रहा था, मा जैसे आत्म हत्या कर रही थी। न जाने कौन सी शक्ति उसकी साँस बन्द किये दे रही थी।

सहसा बच्चे ने तीव्र चीत्कार किया, और फिर सब शान्त हो गया।

आततायी भी मिनट भर को स्तम्भित रह गये। अब तक, जो मार रहा था, और जो हुक्म दे रहा था—दोनों मन-ही मन खूब समझते थे, बच्चे की हत्या का भय किवाड खुलवाने का सबसे आसान उपाय है। उसे मारना किसी का ध्येय नही था। वे कुछ और चाहते थे। अबोध शिशु की हत्या किसी का अभीष्ट नही थी।

अब वह मर गया—नायक ने जाकर देखा, बच्चे की पतली-सी जीभ आध इंच बाहर निकल आई है आखें खुल गई हैं। उसमे दम नही था।

मर गया!

सुनते ही मनभरी ने दीवार मे सिर दे मारा, और कटे रूख की तरह ढह पडी। मुह मे बोल न निकला, न आख से पानी। दो मिनट ढही पडी रही, फिर पागल की तरह उठी।

नायक का वज्र गम्भीर स्वर सुनाई पडा—'किवाड खोलती है कि '

उसने दहाड मारकर कहा—'हत्यारे! नही खोलूगी ।

शिशु की हत्या ने नायक का मन निबल कर दिया था। मनभरी का उत्तर सुनकर वह आवेश म भर गया। बोला—'किवाड तोडकर हराम-जादी को बाहर निकाल लो और सारे घर म आग लगा दो!'

मनभरी ने उससे भी ज्यादे जोर से कहा—तोड दो किवाड! लगा दो आग! मार दो मुझे! मेरा बच्चा! अरे गाव वालो, हो क्या सब मर गये?'

पर न कही आवाज पहुँची, न कोई मदद पर आया।

लात पर-लात पडने लगी, पहले तीन, फिर चार, फिर पाचो आदमी जुट गए। लकडी का किवाड—कब तक विद्रोह करता? मनभरी किवाड के नीचे दब गई।

फिर उसे होश न रहा। उसी नर-पिशाच की वज्र ध्वनि स्वप्न-से म सुनाई दी। सब सामान लेकर चले जाओ, मैं पीछे आऊँगा!

फिर उसे खटपट की कुछ अस्पष्ट-सी आवाज सुनाई दी थी, और फिर गहरी मूछा छा गई।

मनभरी जब होश मे आई, तो चारो तरफ घुप्प अन्धकार था। अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो गया था। उसने स्वप्न देखा था? एक-एक करके सब बात याद आने लगी। हा, दरवाजा टूट गिरा था। फिर?

उसने स्मृति पर ज़ोर डाला। क्या उसके बाद की सभी बातें सच है? उसने आखें फाड फाडकर देखा। दरवाजा टूटा पडा था। जरा आगे सरकी, तो चौक मे चादनी उसी तरह छिटकी हुई थी, चन्द्रमा मध्याकाश से जरा ही आगे गया था। उस घटना को अधिक देर नही बीती।

बिजली की तरह एक बात उसके मस्तक मे घूम गई। उसने अनुभव किया वह अस्त-व्यस्त पडी है। धोती अलग हो गई है, जाकट फट टूट गई है। हे भगवान! यह क्या हुआ!

मन और शरीर का सारा बल लगाकर वह उठी, जल्दी-जल्दी वस्त्र पहने, और बरामदे म चली आई। आततायी चले गये थे। न जाते, तो भी उसका सोच उसे नही था। दुनिया उसके लिए अँधेरी हो चुकी थी।

पहले उसने खाट पर हाथ मारा। बच्चा वहा नही था। चौक मे भी नही था, छत पर भी नही था। हाय। इस समय उसका शव ही मिल जाता!

चटक चादनी मे वह अभागिनी मिनटा तक स्तम्भित खडी रही।

इसके बाद जैसे उसकी रही सही चेतना लुप्त हो गई। हवा की तेजी से वह काठ की सीढी पर छलागे मारती नीचे आई, और बाडे मे होती हुई बाहर निकल आई।

बाडे म से तीना मस गायब हैं—इस पर भी उसने ध्यान न दिया।

केश उसके बिखर गये थ, कपड अस्त-व्यस्त होकर उड रह थे, नगे पैर रेत म धँसते थे और धूल उडाते थे। इस विजन रात म कैसा भी हिम्मती आदमी उसे देखकर भयभीत हो जाता!

कहाँ जा रही थी— यह वह खुद नही जानती थी। उसका सब-कुछ लुट गया। अब वह क्या करे—कहा जाय—कौन उस बचावे? उसकी सारी निधि छिन गई, उसके राजा से पति की धरोहर हडप ली गई, उसका लाल उससे छिन गया। किसके लिए अब वह रहे? किसे अपना कहे?

दुनिया के किस कोने मे उसे जगह मिलेगी ? माथे पर जा कलक लग गया, सो लग गया—कोई शक्ति उसे मिटाने मे समथ नही है।

वह गौने की रात—वह रस-भरे दिन, वह सुख और आनन्द की हिलोरें, और फिर उसके राजा का वह शरीर, वह मुह, वह मुसकान, फिर—वह चैन की बसी, वह मीठी नीद, वह दूधो के नरिया ! वह समय अब कहाँ ?

अपने राजा से वह लड पडी। वह उसे छोडकर फौज म चल दिया, जब चिट्ठी आई तो चैन पड गया ? फिर उस दिल के टुकडे पर—उस नन्हे से बालक पर उसने सारा स्नेह उडेल दिया, राजा की सूरत उसी मांस के लोथडे की हँसी मे देखनी रही, राजा लौटकर आता, घर मे फिर वही आनन्द का चश्मा बहता ! वह समय अब कहाँ ?

लानत ! उसके जीवन पर लानत ! कोई उसका मुह न देखे। यह चन्द्रमा छुप जाय ! जगल के पेड पीठ फेर लें ! तालाब का पानी सूख जाय ! जो उसे देखेगा, कलकित हो जायगा ! हा, अभागिनी !

'कहाँ जाय ? कहाँ जाय ?' के भाव के साथ ही रेल की लाइन दिखाई दे गई। जीवन का अन्त कैसी आसानी से हो सकता है ! इस भयानक यन्त्रणा से छूटने का कसा सीधा रास्ता है ?

रेल की लाइन पर बैठ गई। हर रोज रात-ढले गाडी की आवाज गाव म जाती थी। अब आती ही होगी। यह भ्रष्ट शरीर छिन्न भिन्न हो जायगा ! इस कलकिनी की मृत्यु शय्या यही होगी। उसका दुर्भाग्य फल फूटने का पूरा मौका पायेगा।

लाइन पर बैठे बैठे फिर वही विचार चक्कर लगाने लगे। वही सुखी जीवन मस्ती के दिन, राजा की सूरत शिशु का जन्म ! वह जीवन कहाँ गया ? वह सुख अब काह को मिलेगा ? कौन उसे नीद म गुदगुदायेगा ? कौन उसे नये कपडे पहनाकर मले ले जायेगा ? खेत पर रोटी-साग लेकर किसे खिलाने जाएगी। हर सोमवार को किसकी चिट्ठी की प्रतीक्षा करेगी ?

उसका मालिक फ्रास मे है। दसो हजार मील परे—रेल, जहाज, सब के बाद। वह कसी हौंस की चिट्ठियाँ भेजता है ! उसे क्या पता—

अब आगे चिट्ठी लेने वाली नहीं है ।
एक चिट्ठी में उसने लिखा था
मनभरी ने कान लगाकर सुना—गाडी की क्षीण आवाज कान में
पडी । उसने लाइन पर सिर रख दिया । बहुत दूर परे जैसे कोई लाइन पर
हथौडा मार रहा था, वातावरण में हल्का-सा कम्पन शुरू हुआ । गाडी आ
रही थी, अब सब सोच विचार वृथा है ।
अभी सब समाप्त हुआ जाता है । उसके राजा को बहुत औरतें—
एक-से एक अच्छी । उसे क्या फिक्र है । हां, पिछली ही चिट्ठी में
लिखा था—लडाई ज्यादे दिन नहीं चलेगी । अभी किसी खेत में शामिल
नहीं हुआ हूँ । घर के लोग याद आते हैं ।
आया करें । हाँ, यह भी तो लिखा था, जान यहाँ आकर प्यारी
लगती है । तुमको देखने के लिए जी भटकता है । जल्द आकर
पर गाडी की आवाज स्पष्ट हो गई है । अभी सब खात्मा हुआ जाता
है । वह आएगा तो और बहुत सी मिल जायेंगी । उसके लिए कमी नहीं ।
अब दुनिया की बातों से उसे क्या ? कुछ ही देर में उसका अन्त हो
जायगा । उसकी देह के किरच किरच उड जायेंगे । प्रातःकाल गाववालों
की भीड उसकी खून-भरी देह के चारों तरफ इकट्ठी होगी । चील, कव्वे,
चींटी, मकौडे—सब उसके खून की प्यास में आ जुटेंगे । लाश के टुकडे
पुलिस में जायेंगे । आह !
रेल की धड धड स्पष्टतर होती जा रही है ।
सब उसकी हत्या पर टीका टिप्पणी करेंगे । तरह-तरह के अनुमान
लगाये जायेंगे । घर में चोरी हो गई (ठण्डी हवा से उसकी चेतना धीरे धीरे
जाग रही थी) किवाड टूटे मिलेंगे, दरवाजे खुले मिलेंगे । लोग उसके
कलंक का अनुमान कर लेंगे । इसके अतिरिक्त ओह !
रेल बराबर बढती आ रही है ।
सारे खानदान पर कलङ्क लगेगा । उसका राजा कहाँ मुह दिखाने
लायक न रहेगा । देवर का ब्याह रुक जायगा । बिरादरी दोनों का हुक्का-
पानी बन्द कर देगी । बेचारों का जीवन नष्ट हो जायगा । ओह !
इंजिन की रोशनी पीली से लाल हो गई थी ।

चोरी हुई है। उसका कलङ्क किसने देखा है ? क्या सबूत है ? चोरी मे क्या कलक ! बल्कि लोगो को हमदर्दी होगी। खानदान तो बदनाम न होगा। सारी बात किसे मालूम है ? जब सहज-ही मे खानदान की इज्जत बच सकती है, तो ।

पर उसका पाप उसका मन भयानक व्यथा का अनुभव कर रहा है। अपनी नजर म वह आप उतरा हुआ घडा बन गई है। कैसे यह मुह वह सबको दिखायेगी ?

इजन की रोशनी लाल से सफेद होकर उसके शरीर पर पडने लगी।

लेकिन उसका धन क्या था ? उस हाथ भी ता नही था। और फिर खानदान की इज्जत उसकी इज्जत स बडी है। खानदान की इज्जत बचाना उसका पहला धर्म है। वह तीर्थ-यात्रा करेगी, उपवास रक्खेगी, शास्त्र सुनेगी पर या न मरेगी ।

लेकिन शरीर उसका जड हो गया है। मन की निर्बलता विद्रूप कर रही है। हृदय की ग्लानि बेडी बनकर पैरो मे पड गई है। कैसे मुह दिखायेगी ? आह !

इजन की रोशनी मे उसका सारा शरीर जगमगा उठा। हाँ, रेलवाला ने देख लिया, तो सुनते हैं, मुकदमा चलता है, फजीहत होती है तब क्या होगा ? ओह राम ! वह रेल आ रही है। कैसा भीषण गर्जन है ! आग की चिनगारियाँ चमक रही है ! चारो तरफ की धरती काप उठी है। ओ

उसके मुह स अस्पष्ट-सी ध्वनि निकली, और वह गेंद की तरह उछल कर लाइन स परे हट गई।

इजन बिल्कुल सिर पर ही मालूम होता था, पर अभी वह सौ गज पर था। धरती का कम्पन बढता जा रहा था। उसका दिल भीषण रूप से धडक रहा था, पैर काँप रहे थे रक्त बेहद तेजी से चक्कर लगा रहा था। लाइन से 20 फुट परे खडी थी। पर धरती के कम्पन से उसने अनुभव किया, मानो इजन हाथ फैलाकर उसे खीच लेगा। वह और पीछे हटी —और पीछे हटी और जब रेल बिल्कुल सामने आई तो पास खडे हुए

एक नीम के पेड से लिपट गई।

रेल चली गई, धरती पहले-जसी हो गई, ब्रेक-वान की पीठ की सुख रोशनियाँ मोड पर जाकर छुप गई, पर मनभरी की धडकन दूर न हुई। वह नीम के पेड से लिपटी खडी थी।

सहसा कुछ उसके ऊपर गिरा। उसने चीख मारी ! साँप ! एकदम ऊपर नजर गई। किसी की दो आखें चमकती सी दिखाई दी। सहसा पेड जोर से हिल उठा, और पत्तियो मे कोई काली चीज हिलती दिखाई दी। भूत !

मनभरी का रक्त-प्रवाह शिथिल हो गया। मुह जसे सी गया। एक अन्तिम दृष्टि उसने चादनी म नहाये हुए खेता पर डाली। हैं—यह कौन ? सामने कोई भीषण दत्य हाथ मे बडा-सा लठ लिए उसकी तरफ आ रहा था !

मनभरी क मुह से स्वर न निकला, और वह वही ढह पडी।

सवेरे लोगा ने आकर देखा—एक औरत (गाव के लोगो ने उसे पहचान लिया) रेल की लाइन से पच्चीस गज परे नीम-मुर्दा हालत म पडी है। उसके पास ही रस्सी का एक टुकडा, और पड पर एक बडा-सा बन्दर पाया गया। थोडी दूर पर बरसात की कमी के कारण, एक अस्थायी कुआ खोद लिया गया था, जिस पर पानी खीचने के लिए दो मोटे शहतीरो पर तिरछी लकडी म पिरोकर एक पहिया लगाया हुआ था।

जिस भय ने मानुपी को साक्षात रण चण्डी का रूप दे दिया था, उसी भय ने, रस्सी को साप, बन्दर को भूत और निर्जीव काठ के शहतीर को दैत्य बना दिया।

दुनियाँदारी

उस वर्ष की एल०-एल० बी० पास करने वालों की लिस्ट में कमलाकर सबसे कम उम्र थे। जब नतीजा आया, तो घर में तरह-तरह की खुशियाँ मनाई गई। परिवार-भर में कमलाकर पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इतनी ऊँची शिक्षा प्राप्त की। बड़े भाई रुई के बाजार में किस्मत आजमाई करते थे जहाँ उन्होंने लम्बे खेल खेले और घर को सोने से भर लिया। छोटे भाई अभी निरे बच्चे थे और स्कूल की किसी क्लास में पढ़ते थे। पिताजी का देहान्त हो चुका था और माताजी को तीर्थ ध्यान और भगवद् भजन को छोड़कर दुनिया की किसी बात से मतलब न था।

बड़े भाई ने रुई के सट्टे में दाना हाथों कमाया। उर्दू और सराफ़ी के वाजबी ज्ञान को छोड़कर बड़े भाई शिक्षा के नाम पर सफ़ेद थे। मगर ज़बान के इतने मीठे, दिल के इतने साफ़, नज़र के इतने पक्के और वचन के इतने सच्चे कि जग उनका यश गाता था। भाइयों को जान से ज्यादा प्यार करते, माता को तीर्थ की तरह पूजते और स्त्री से भी उनका नाता हिन्दुस्तानी फ़र्म के दो समझदार साझियों जैसा था। इन्हीं बड़े भाई के तुफ़ैल से कमलाकर सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़कर मैट्रिक बी० ए०, एम० ए० और एल एल० बी० के द्वार पार कर गए। इतने समय में उन्हें कभी यह सोचने का अवसर न मिला कि किताबें, कॉलेज, प्रोफ़ेसर, परीक्षा और प्रतिस्पर्द्धा के अतिरिक्त कोई और भी ऐसी चीज़ है जिसे सोचना सर्वोपरि और सबसे आवश्यक है। एल एल० बी० करने पर कई महीने उन्होंने पढ़ाई की लम्बी यात्रा की थकान मिटाने, मित्रों और सम्बन्धियों के बधाई के पत्रों का आनन्द लेने और सहपाठियों प्रोफ़ेसरों और अन्य मान्य व्यक्तियों के

आमन्त्रण स्वीकार करने मे बिता दिए।

आखिर दिन बीते कि इन बातो मे पुरानापन आने लगा। आवारगी खलने लगी, बधाई के पत्र बन्द हो गए, प्रोफेसर और सहपाठी अपने-अपने धन्धे लगे और नॉवल पढने, सोने या सुबह-शाम दरिया-किनारे घूमने के अतिरिक्त कमलाकर को कोई काम न रह गया।

इसी समय एक ऐसी घटना हो गई, जिसने उनके जीवन प्रवाह की गति को एक बारगी बदल दिया।

बडे भाई की किस्मत का पहिया सहसा रास्ता भूल गया। एक बार रपटे कि सँभलना सम्भव न रहा। लाख की दौलत राख हो गई। इज्जत के लेने केन्देने पड गए। जिस रुई के सटटे ने आकाश पर पहुँचाया था, उसी ने पाताल का मार्ग दिखाया। बहुतो ने कहा—'दरख्वास्त दे दो। वडे वडे दे रहे हैं। कौन ऐसा करोडपति है, जिसके नाम पर दिवाले की मुहर नही लगी है? आखिर मर्यादा बचाकर भूखा जान देनी पडी, तो क्या बात रही? अपना ख्याल न करो, कुटुम्ब की तरफ तो देखो।' मगर बडे भाई के दिल पर कोई बात असर न करती थी। उन्होने सर्वस्व गँवाकर भी लेनदारो का चुकाया और जब कुछ भी न रहा, तो मुह छिपाकर घर मे आ बैठे। जिन्हे मिल गया, बगलें बजाने लगे, जिन्हे न मिला, चुप होकर बठ गए।

इस घटना ने नक्शा बदल दिया। बडे भाइ भी एकदम बदल गए और उनके प्रति दुनिया का व्यवहार भी एकबारगी बदल गया।

अब समय आया, जब कमलाकर उस बात का विचार मन मे लाने पर विवश हुए, जो किताब, कालेज, प्रोफेसर, परीक्षा प्रतिस्पर्द्धा से भी तथा बधाई और आमन्त्रण से भी ऊपर की और आवश्यक चीज है।

२

छ महीने के तजरबे ने कमलाकर को बता दिया कि वकालत का पेशा उन जैसो के लिए नही है। वकालत के मैदान मे किसी तरह घुसे तो सही, *मगर जैसे मार-मारकर हकीम बनाए गए हो।* उनके ही सगी साथी जब उसकी तरह काम से चिपटे दिखाई देते, दबादब केस पर केस जीतते, जेबें

भर-भरकर रुपये लाते और ले जाते दिखाई देते, तो कमलाकर झेंप के मारे गड जाते थे। छ महीने म बारह मुन्शी बदलने पड़े, बाईस चौबीस रुपये की सूखी मुलाजमत पर कौन मस्तराम मुन्शीगिरी कर सकता था? फिर उसकी वसूली क भी लाले पडे रहत थे। केस तो क्या—काई नोटिस लिखानेवाला तक दिखाई न देता था। महीन के तीस दिन जब बार रूम मे मुह बाये बैठे रहते और सन्ध्या को बिना गेंद छुए रिटायर हो जानेवाले क्रिकेट के खिलाडी की तरह मुँह लटकाये घर को लौट जाने का प्रोग्राम बन गया, तो कमलाकर ने झेंपकर बार रूम म बैठना छोड दिया। पर गर्मी की शिद्दत म मुन्शी की कोठरी म दिन बिताना भी असम्भव देखकर उन्होंने कचहरी जाना ही क़रीब-क़रीब बन्द कर दिया।

फिर भी आशा और तृष्णा के पतले सूत के सहारे लटके हुए जा रहे थे। घर म भीषण आर्थिक सकट। मकान फाड खाने को आता था, सबके चेहरों पर उदासी थी, छोटे भाई का पढना छूट गया और उस एक अर्द्ध-सरकारी सस्था म बीस रुपय की नौकरी करनी पडी, बडे भाई कमर-टूटे सिंह की तरह कोने म पडे कराहा करते थे, माताजी का भगवदभजन और ध्यान-पूजा और बढ गया था। घर मे कोई हँसता चेहरा दिखाई न देता था।

विवाह के कमलाकर कट्टर विरोधी थे और इसीलिये सत्ताइस वर्ष की उम्र तक वे कुवारे थे। इन सत्ताइस वर्षों में एक दिन ऐसा नहीं आया, जब उन्हें अपने विरोधी सिद्धान्त पर पछतावा हुआ हो। घर के लोग इस बारे म इतनी काफी बहस कर चुके थे कि कभी न खुल सकनेवाली गाँठ की तरह उन्होंने कमलाकर के निश्चय को उन्ही की इच्छा पर छोड दिया था।

अब इस उदासी के वातावरण मे कमलाकर को विवाह की जरूरत महसूस हुई और यह अहसास इतना बढा कि गरीबी के कारण मन माफिक कन्या न मिलने पर भी उन्होंने जो मिली झटपट उससे शादी कर डाली।

ससुराल से कुछ रुपया मिला, और कई महीने सुख से गुज़र सकने लायक मनोरजन भी मिला। इसी स वकालत का अभिनय कुछ दिन टिका रह सका।

परन्तु कुछ समय बीता कि फिर वही । और एक घटना ने ता उनकी वकालत और वकालत करने के इरादे को सदा के लिए तिलांजलि दिला दी।

उस दिन सुबह गजरदम एक आदमी हाथ जोड़े उनके दफ्तर के कमरे म घुस आया। उम्र कोई ५१ वर्ष, सिर और दाढ़ी के बाल सफेद, बदन का कपड़ा इंच इंच पर फटा हुआ और चेहरा दयनीयता की आर्द्रता से ओत प्रोत।

मालूम हुआ कि जिन्दगी म पहली बार मुकदमे मे फँसा है। दस रुपये सैंकडे के ब्याज पर दस रुपये लाया है और बाजार में निर्मो वकील का पता पूछने से उनके द्वार तक आना सम्भव हुआ है। अब यदि वे दस रुपये लेकर किसी तरह उसे उबार सकें, तो उसका रोम रोम कृतज्ञ हो जाय।

मामला यह था कि किसी महाजन ने साल भर पहले उससे एक कोरे कागज पर टिकट लगाकर अँगूठा लगवा लिया और कुछ दिन बाद रुपये देने का वादा कर लिया। फिर रुपये देने दर किनार, अब एक साल बाद सौ रुपये और सूद की नालिश ठोक दी।

कमलाकर ने सारा मामला सुना और उनकी आखें भर आइ। उन्होने मेज पर रखा हुआ नोट बूढ़े को वापस कर दिया और बताया कि मुकदमे मे उसकी हार होनी अवश्यम्भावी है, फिर भी वे बिना कुछ लिए उसकी तरफ से खडे हो जायेंगे। बूढे ने बिनती की कि दस रुपये का नोट रख लिया जाय, पर जब कमलाकर इस पर राजी न हुए, तो वह यह कहकर चला गया कि थोडी देर बाद लौटकर आएगा। थोडी देर बाद क्या, बहुत दर बाद तक भी वह लौटकर आया नहीं।

तीसरे पहर कमलाकर इसलिए अदालत गए कि देखें बूढे पर क्या बीती। अदालत के अहाते म एक पेड के नीचे बूढ़े से उनकी भेंट हो गई। रोते रोते उसकी आँखें सूज आई थी, और वह पागलो की दशा म वहां पडा हुआ था। डिग्री उस पर हो गई थी और जिस बात को सुनकर कमलाकर का हृदय दहल गया, वह यह थी कि उन्ही के एक सहपाठी वकील ने सब्ज बाग दिखाकर बूढ़े से वह दस रुपये का नोट एठ लिया।

३

वकालत के बाद कमलाकर का मन व्यापार पर चला, और कुछ मित्रों और शुभचिन्तकों के प्रोत्साहन पर उन्होंने व्यापार आरम्भ किया।

चार-पाँच हजार की पूँजी से स्टेशनरी की अच्छी-खासी दूकान जम गई। अपनी ससुराल से उन्हें उपरोक्त सहायता मिल गई। बड़े उत्साह से दूकान का श्रीगणेश किया गया। कमलाकर का जी व्यापार में उलझने लगा। उन्होंने रातों रात जागकर दूकान के दरवाजों पर रोगन कराया, लालटेन जला-जलाकर फर्श पर सिमेंट कराई, अपना हाथ दे-देकर आलमारियाँ सजवाई और छोटी मोटी घाटा की पर्वाह न करके नई विलायत से आई हुई स्टेशनरी की पेटियाँ खोल खोलकर माल लगवाया।

उद्घाटन होते ही दूकान ऐसे ठाठ से चली कि देखने वाले दंग रह गये। सुबह से शाम तक ग्राहकों का ताँता टूटने का नाम न लेता। कमलाकर ने धीरे धीरे सरकारी और अर्द्ध-सरकारी दफ्तरों में अपनी पैठ करनी शुरू की। थोड़े ही दिनों में दूकान के साथ साथ दफ्तर, बाबू, चपरासी, टेलीफोन—सब-कुछ हो गया। कमलाकर खुद सारे काम की देखभाल करते, दिन भर भिन्न भिन्न दफ्तरों के ऑर्डर लेने के लिए फोन थामे बैठे रहते, जरूरत होने पर झट खुद दौड़ जाते। अपने अध्यवसाय और साफल्य से उन्होंने सब किसी को चकित कर दिया।

पर कमलाकर की प्रकृति का एक दोष न गया। यों कहने को उसे गुण कहा जाता है, पर व्यापारी के लिए यह गुण जहर की गाँठ है। उनकी प्रकृति में यौवन-सुलभ उद्धतता ज्यों-की-त्यों बनी रही। समय अच्छा था, सफलता मिलती गई, न यौवन-सुलभ उद्धतता किसी को अखरी, न अनुभव शून्यता के कारण कुछ हानि हुई। तैश में आकर किसी से कुछ कह भी उठे, तो लोग हँसकर टाल देते। किसी समय कोई हल्की बात मुँह से निकल जाती थी तो लोग इसे नातजुरबकारी का नतीजा समझकर गरदानते नहीं थे। समय बीतता जाता था कमलाकर परिवार की गत श्री को लौटाने का उपक्रम करते रहे।

चढ़ाकर गिराना और गिराकर चढ़ाना प्रकृति का अटल नियम है। जो जितने दक्ष हैं उनका उत्कर्ष उतना ही अधिक स्थायी रहता है।

कमलाकर के उत्थान का समय आया, पर वे पासा चित खिलाड़ी थे। यों उम्र तीस के करीब पहुँचती थी, और एक बच्चे के बाप थे, पर तबियत से अल्हड़पन और तुनुकमिजाजी दूर न हुई थी, न स्वभाव में उस ठंडी सहनशीलता का विकास हुआ था, जो एक व्यापारी को बड़े-से-बड़े संकट के समुद्र से भी साफ उबार ले जाती है।

सफलता का जोम बहुत प्रबल होता है। कमलाकर के मिज़ाज की गर्मी बढ़ती ही गई। सौ-पचास का ऑर्डर उनकी आँख में जँचता ही न था और दस-पाँच रुपये तो जैसे ठीकरे के टुकड़े थे। अकसर बात करते करते ग्राहक से झुंझला पड़ते थे। बड़े-बड़े ऑर्डर देनेवाले दफ्तर के मैनेजरों से बहुधा उनकी बात-चीत का ढंग ऐसा हो जाता था, मानो कोई एहसान कर रहे हैं। मुनाफे का अनुपात भी अब अंधाधुंध रहता था। लोग उनके पुराने व्यवहार में बँधे हुए थे और इन परिवर्तनों की ओर ध्यान देने का उन्हें अवकाश न था। पर हरएक बात और हरएक चीज का समय होता है।

गर्मी के दिन थे। कमलाकर खस की टट्टी के पीछे सजे हुए कमरे में तकिये के सहारे ऊँघ रहे थे। पंखा चल रहा था। सहसा नौकर ने आकर खबर दी—'सरकार, जानसन साहब का टलीफोन है।'

कमलाकर ने ऊँघ से चौंककर पूछा—'कौन जॉनसन?'

'सरकार, बनहम कम्पनी के मैनेजर।'

कमलाकर ने झोंक में कह दिया—'कह दो, मैं नहीं।'

नौकर चला गया। घण्टे भर बाद कमलाकर बाहर आये। क्या देखते हैं—एक नौकर की असावधानी से स्याही की कुछ बोतलें टूट गई हैं, जिससे बहुत-सामान नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।

कमलाकर ने लपककर ताँगे का चाबुक उतारा और बेतहाशा नौकर को पीटना शुरू किया। आखिर मारते मारते थक गये, तो आकर कुर्सी पर बैठ गए। चेहरा गुस्से से लाल हो रहा था। नौकर-चाकर सब दम-साधे खड़े थे। दफ्तर के आगे की भीड़ धीरे-धीरे छँट गई।

इसी समय फिर टेलीफ़ोन आया। जॉनसन साहब कह रहे थे—'वेल कमलाकर, हमने आज चार दफ़ा फोन किया, आप किधर रहे?'

कमलाकर भरे तो बैठे ही थे, अनखनाकर बोले—'कहिए, क्या मेरे नाम का कोई वारण्ट है ?'

जॉनसन ने मजाक में उत्तर दिया—'आपको इसी वक्त हमारे दफ्तर आना होगा।'

कमलाकर ने उसी स्वर में जवाब दिया—'इस वक्त मुझे बिल्कुल फुर्सत नहीं है।'

जॉनसन ने गम्भीर होकर कहा—'हमें आपसे कुछ लेना नहा है, आपको बहुत जरूरी ऑर्डर देना है।'

अब भी कमलाकर का भाव बदला। कहने लगे—'आर्डर आप टेलीफोन पर लिखवा सकते हैं।'

जानसन ने कहा—'टेलीफोन पर नहीं, बिना पसनली मिले काम नहीं हो सकता।'

कमलाकर बोले—'बिना पसनली मिले काम नहीं हो सकता, आप इधर आइये, मेरे पास टाइम नहीं है।'

कहकर उन्होंने टेलीफोन रख दिया।

उनका यह व्यवहार उनके लिए काल बन गया। जॉनसन विलायत से आया हुआ एक नौजवान था। कमलाकर का यह अपमान उसके कलेजे में पड गया। अंग्रेज कौम की हठ विख्यात है,—जिस किसी के पीछे पडे कि तबाह कर दिया। जानसन ने तुरन्त कमलाकर के सर्वनाश का बीज बो दिया। हफ्ते भर के भीतर एक मार्केट में किसी यारापियन ने स्टेशनरी की एक बडी भारी दूकान खोल डाली। तार दे-देकर कलकत्ते, बम्बई और विलायतो से माल मँगवाया गया और शहर के तमाम दफ्तरों का रुख इस दूकान की तरफ फिर गया।

शहर भर में इस घटना की चर्चा हुई। शुभचिन्तकों ने कमलाकर को समझाया कि जॉनसन की खुशामद करें। किसी ने कहा—'सौ-पचास रुपया लगाकर डाली वाली झुका दी, फिरंगी का खुश करना ही क्या ?' एक सज्जन, जो जॉनसन के खास दोस्तों में थे, कहने लगे—'जानसन पक्का पियक्कड है, एक दिन पार्टी दे डालो, किसी तवायफ का नाच करा देना, बस, तुम्हारे हाथों बिक जायगा, बिक।'

पर कमलाकर की आँखो मे दौलत का खुमार था। गर्दन हिलाकर बोले—'देखना है, जीत किसकी होती है। मैंने सिद्धान्त के लिए बडे बडे त्याग किये हैं, अब अपने मुह पर कालिख न लगाऊँगा।'

मगर कुछ हफ्ता के भीतर कमलाकर का चेहरा काला पड गया। एक-एक करके सभी दफ्तरो ने उनका बहिष्कार कर दिया। नई दूकान की प्रतिस्पर्द्धा कमलाकर ने अपनी चीजो की दर लागत से भी कम कर दी, पर कही उनकी पूछ न होती थी। दूकान मे माल के अम्बार जमा थे, पर निकासी नाम मात्र को न थी। दफ्तरो की अकड मे खुदरा बिक्री उनकी थी नही, बाजारवाला से सम्बन्ध बिगड चुके थे, अब सुनने और हँसनेवाले सब थे पर हमदर्द कोई न था। उल्टे जिनका लेना-पावना था, वे मुद्दत से पहले पल्ले पसारकर आ बैठे। बक मे जितना रुपया था, सब भुगतान मे दे दिया। रोकड मे पाई नही, और लेनदारो की भीड लगी हुई। यहा तक कि दफ्तर और दूकान मे काम करनेवाले नौकर-चाकर और क्लर्क लोग भी अपनी-अपनी तनख्वाहें माँगने के लिए कमलाकर को चारा तरफ से घेरकर खडे हो गए।

४

जब से बडे भाई ने रुई के सट्टे म शिकस्त खाई, वे दुनिया मे एकबारगी उदासीन हो गए। घर की एक छोटी कोठरी को उन्होंने अपना वास-स्थान बनाया और घरवालो से बोलना तक उन्होने छोड दिया। सच्ची बात तो यह है कि उनकी पत्नी को छोडकर किसी घर वाले को उनसे कुछ भी हमदर्दी न रह गई थी। बीस रुपये पर ग्यारह घण्टे खटनेवाले छोटे भाई तो मुह पर ही कभी-कभी यह भी कस दिया करते थे कि भाई साहब की बदौलत ही आज हमे यह दिन देखना नसीब हुआ है। छोटे भाई ही उस समय कमाऊ पूत थे, इस लिए कोई उनके रिमार्क का विरोध न करता था। बडे भाई सुनते थे और फीकी हँसी हँसकर रह जाते थे। पर मन मे और एकान्त मे उनकी जो दशा होती थी, वह उल्लेख से बाहर है।

जब से कमलाकर का व्यापार चमका, घर मे फिर आनन्द हिलारें लेने लगा। छोटे भाई भी बीस रुपये की मुलाजमत छोडकर दूकान पर मैनेजरी

करने लगे थे, और महीने मे दो नए सूट सिलवाने का उन्हे मज हो गया था। छोटे बाल-बच्चे भी छीटा खाई हुई बरसाती बेल की तरह लहलहा उठे, घर-भर मे श्री और सौभाग्य का चिह्न दिखलाई पड़ने लगा। पर बड़े भाई को दुनिया मे दिलचस्पी लेने के लिए यह भी पर्याप्त न था। अब उनका शोक वैराग्य का रूप धारण करने लगा और यदि कमलाकर की स्त्री के मुख से पत्नी के प्रति तरह-तरह के ताने नित्य उनके कान म न पड जाया करते, तो वे कभी का सन्यास ग्रहण कर चुके होते।

कमलाकर से महीनो उनकी बात नही होती। अक्सर एक एक हफ्ते तक दोनो भाइयो की देखा देखी तक नही होती। कमलाकर यह जरूरी नही समझते कि भाई की कोठरी तक जाकर अपने अमूल्य समय का क्षण नष्ट करें। बडे भाई कुछ नही करते और कमलाकर उनके और बाल बच्चो के भोजन की व्यवस्था करते हैं, इसका उल्लेख उन्होने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे अनेक लोगो से किया है, और लोग इसके लिए सदा उनकी प्रशसा करते हैं। यह प्रशसा भाई के प्रति उनके स्वर्गीय स्नेह की पक्की रसीद है।

पर बडे भाई अक्सर चुपचाप कमलाकर को भर-नजर एक बार देख लिया करते हैं। इससे उनकी आत्मा को बडा तोष मिलता है। कमलाकर के लिए उनके मन मे जो भाव हैं, उन्हे या वे जानते हैं, या भगवान्! पर अपने इस भाव को सबसे अप्रकट रखने को ही वे अपने जीवन की साधना मानते हैं।

गत कई दिनो से कमलाकर के चेहरे पर कुछ नया भाव है। बडे भाई देखते हैं और समझने की कोशिश करते हैं। घर के और सब लोग भी देखते हैं पर समझने की कोशिश कोई नहीं करता।

× × ×

रात गए छोटे भाई घबराये हुए आये। शाम का चौके से उस दिन कमलाकर की गैर हाजिरी हुई। सब घरवाले चिन्तित थे। छोटे भाई ने आकर सब बात सुनाई। औरतें और बच्चे—यहा तक कि बूढी अम्मा भी मनोयोगपूर्वक इस नई विपद् का हाल सुनने लगी। और भी एक प्राणी सुनने लगा पर किसी का उसका ध्यान नहीं था।

शाम का नगादेवालो की फौज आ गई। कमलाकर को नौकर तक जिवह करने को तैयार थे। बडी मुश्किल से लोगो से एक दिन की मोहलत ली गई। कल या तो दीवाला है— या । अब कमलाकर दूकान भीतर से बन्द करके वही सोये हु।

गई रात तक मिस्कौट होती रही। अब सब माजरा खुला। पिछले कई सप्ताहो म कमलाकर घर का सब ज़ेवर ले जा चुके हैं। अब घर मे कुछ शेष नही। किसी के दिमाग में कुछ न आया, सुबह चार बजे के करीब सब की आखें झपक गइ।

५

सुबह सात बजे किसी ने दरवाजा थपथपाया। रात भर कमलाकर की पलक न झपकी। आँसुओ से तकिया तर ब तर था और आखें लाल हो रही थी। आहट सुनकर माथा ठनका—जरूर कोई नगादेवाला है।

दूसरी थपकी पर उन्होने उठकर दरवाजा खोल दिया। देखा तो बडे भाई! कमलाकर अवाक रह गए और चार वर्ष पहले का दृश्य उनकी आखा आगे नाच गया। वही रेशमी शेरवानी, फैल्ट टोपी, चूडीदार पायजामा, उँगलियो म जडाऊ अँगूठिया, जेब मे सोने की चेन, बाल सलीके से बने हुए आखो म सुरमा, मुह म पान और चेहरे पर नूर बरस रहा था।

कमलाकर को आँखो पर विश्वास न हुआ। अटकते गले से बोले—'भाई साहब—'

बडे भाई मुस्कराकर भीतर आये और कमलाकर की भीगी आखो की ओर देखकर हँस पडे। कहने लगे—'अभी बच्चे ही रहे न! लाओ, तिजूरी की चाबी मुझे दो और खबरदार, जब तक मैं न बुलाऊँ दूकान पर पैर न धरना! जाओ घर जाओ—सब सूखे जा रहे हैं।'

कमलाकर को कुछ होश नही, कितनी देर वे बडे भाई के पैरो से लिपटे रहे और कब और कैसे वह घर आए।

आठ बजते-बजते नौकर-चाकरो का आना शुरू हुआ। उन्होने एक नये आदमी को कुर्सी पर तने बैठे पाया। उसके मुह म कमलाकर के हुक्के

की नाल थी और हाथ म रोजनामचा। सामने ही तिजूरी खुली पडी थी और नोटो की बहुत सी गड्डियाँ और कुछ खुले नोट और रुपये बिखरे पड़े थे।

सब अपने-अपने काम म चुपचाप लग गये। किसी के मुह से शब्द न निकल सका।

कुछ देर बाद लेनदारो की भीड आकर इकट्ठी हुई। वडे भाई को सभी जानते थ। उन्होंने सब को आदर से बिठाया, पान इलायची से सबका सत्कार किया और कहने लगे—'सोचा था, बाबू साहब एम० ए० कर चुके हैं वकालत भी की है। खुद कमा-खा लेंगे। मगर तालीम दूसरी चीज है, व्यापार दूसरी चीज। पचास हजार की उगाही है और नब्बे हजार क सरकारी कागज धरे हुए हैं, मगर दस पाँच हजार का भुगतान आया तो होश बिगड गये।

—फिर जरा स्वर को और तेज करके बोले— बाजार के लोग ऐसे नासमझ हैं कि वह इस बात का भूल गए, कि कमलाकर उस भाई का भाई है, जिसने एक दिन मे नौ लाख का भुगतान किया था। मगर किया क्या जाय, अपना ही तो सोना खोटा है। समझाया था इस व्यापार म सब ओछे आदमी हैं न अपनी इज्जत रखते है, न दूसरे की इज्जत समझते है। मगर

' खैर, भाई साहब, कहिए कसे पधारे?' कहकर बडे भाई ने एक सज्जन ने कहा— आपका कोई बिल है?' वे खुली तिजूरी पर नजर गडाए बठ थे, सहसा यह प्रश्न सुना तो भागने का रास्ता ढूढने लगे। हक्बकाकर बोले—'जी नहीं, मैं तो आपसे मिलने चला आया था।'

वडी मेहरबानी।' बड़े भाई सौजन्यपूर्वक बोले।

'आप तशरीफ रखिये, मैं अभी आपसे बात करूँगा।'

—फिर एक सज्जन स बोले—'अच्छा आप तो खाता भी लाए हैं? भाई साहब अभी आप बच्चे हैं, आपसे क्या कहूँ मगर इतना याद रखें कि हाथी की मांद बहुत गहरी होती है।'

कहकर भाई साहब ने अपनी बही म उनका हिसाब निकाला और हुक्के का गहरा कश लगाकर कहा—'बस? सिर्फ बाईस सौ रुपए?

कहिए—कैसे नोट दूं ?'

—फिर साथ ही साथ मैनेजर से बोले—'देखिए, इनके नाम बाइस सौ रुपये लिखकर चुकता की रसीद ले लें और खबरदार, आइंदा इनसे उधार माल मँगाया।'

अब तो उन महाशय को बाई चढ़ आई। कहने लगे—'राय साहब, इस गरीब की रोजी चली जायगी, मैं तो नौकर आदमी हूँ, आप रुपया दूकान पर भेज दें—मैं चला !'

बस, फिर क्या था ? एक-एक करके सब चल दिए। कुछ तो सिर्फ भाई साहब से मिलने आए थे, कुछ हिसाब मिलाने और कुछ माल का भाव-ताव करने।

६

दिन-भर डटकर काम हुआ। किसी कर्मचारी के मुंह से आवाज न निकली। कुछ ही घण्टों में कुछ चुमकारकर, कुछ को डाटकर, कुछ से हँसकर—सब को बेदाम का गुलाम बना लिया।

बाजार-भर में दिन-भर यही चर्चा होती रही। किसी ने कहा—'हमने कहा था न, लाखों बैंक में जमा हैं, यह सिर्फ फरेब है !' कोई बोला—'अजी, कमलाकर अभी लौंडा है, वह क्या जाने 'बिजिनेस' किस चिड़िया का नाम है ?' किसी ने दबी जबान से यह भी कहा—'मगर बड़े भाई भी खूब आदमी हैं ! क्या रंग जमाया है !'

बड़े भाई रात को घर न गये। बड़ी रात तक जागकर उन्होंने हिसाब-किताब समझा, असल स्थिति का ज्ञान किया और अगले दिन शाम को, बाबू लोगों के जाने के बाद वे जॉनसन के बँगले पर पहुँचे।

दिन में उन्होंने टेलीफोन पर तय कर लिया था। जॉनसन साहब ने कमलाकर की जड़ छीलने में कसर न रक्खी थी, पर उनकी दृढ़ता के वे मद्दाह थे। बड़े भाई से उनका कोई परिचय न था, पर कमलाकर के बड़े भाई हैं—इस बात ने उन्हें उनसे मिलने के लिए बहुत आकृष्ट किया।

बड़े भाई घोड़ा गाड़ी से उतरे और साथ में तीन नौकर, सब्जी, मिठाई, रेशमी कपड़ा और खिलौनों के बोझ लिए भी उतरे। सब सामान

चुपके-से मेम साहब के पास भेज दिया गया और बडे भाई जानसन साहब के पास पहुँचे भी न थे कि बच्चे नये खिलौने लिए उछलते-कूदते आ पहुँचे। पीछे पीछे मेम साहब एक रेशमी थान हाथ मे लिए आती दिखाई दी।

जॉनसन साहब को मालूम हुआ तो खुश हो गए। उन्होने इज्जत के साथ बडे भाई से हाथ मिलाया और दो मिनट तक उनका हाथ अपने हाथ म लिए रहे।

बड भाई ने हिन्दुस्तानी म ही बात शुरू की। जॉनसन साहब साफ हिन्दुस्तानी बोलते थे। उन्होने अपनी मेम साहब स भी परिचय कराया। बडे भाई मेम साहब के सम्मुख विनय शीलता की मूर्ति बन गए। जब साहब ने कहा—सिट डाउन !' तो आरामकुर्सी के एक कोने पर बैठ गए। साहब न कहा—'आराम से बैठो' तो बडे भाई धीरे धीरे बेतकल्लुफ हो गए। साहब के एक बच्चे को गोद म लेकर प्यार करने लगे और साहब से बातें भी करते रहे।

आध घण्टे की बातचीत म ही सब पता चल गया। नई स्टेशनरी की दूकान म रुपया जॉनसन साहब का था और कार्यकर्त्ता उनके चचेरे भाई थे। बडे भाई ने बातचीत के लच्छो मे जॉनसन साहब को ऐसा उलझाया कि वह उनके सौजन्य पर मुग्ध हो गया।

चाय आदि से बडे भाई का सत्कार किया गया। बातचीत से बडे भाई भाँप गये—जॉनसन साहब नई दूकान मे रुपया फँसा तो बैठे है, पर चचेरे भाई की बेईमानी और व्यापार की अनभिज्ञता स परेशान हैं। यह बात बडे भाई ने जी म धर ली।

उठते उठते उन्होने कहा—'साहब, मेरी खुशी तो तब हो, जब आप कल मेरे मेहमान बनें।

जॉनसन की पत्नी भीतर चली गई थी। आँख मारकर साहब बोले—'क्या इण्डियन गाना होगा ?'

बडे भाई न उसी तरह सैन चलाकर कहा—सा'ब, तबियत खुश हो जाएगी।

जॉनसन ने हाथ मुह की तरफ उठाकर कहा—'और यह भी रहेगी ?'

'जरूर !'

'तब हम जरूर आएगा।'

पूर एक सप्ताह तक बड़े भाई घर न गये और कमलाकर दूकान पर न आये। आठवें दिन बड़े भाई ने आदमी भेजकर उन्हें बुलाया।

आते ही बड़े भाई ने एक सन्दूक उनके आगे रख दिया।

दूकान म और कोई न था। कमलाकर ने सन्दूक खोला, तो दो चीज़ो पर नज़र पड़ी। पसे दजन मिलनेवाले नकली नोटो का एक गट्ठर और स्टेशनरी की नई दूकान का गुडविलसमेत बयनामा।

बयनामा कमलाकर के नाम था और उस पर जॉनसन और उसके चचेरे भाई के हस्ताक्षर थे।

तिजूरी की तालियाँ कमलाकर के आगे फेंककर बड़े भाई उठ खड़े हुए और विषण्ण भाव से बोले—'अट्ठाईस हज़ार के नोट रखे हैं, दस बजते ही बैंक भेज देना।'

कमलाकर ने पूछा—'कहाँ से आये हैं?'

'कुछ नए आडरो का अडवान्स है, बाकी सेल हुई!'

कमलाकर के मुह से बोल न निकला। बड़े भाई दरवाज़े की तरफ बढ़े।

कमलाकर बोले—बैठिए—कहा चले?'

'बस, अब जाता हूँ, जीता रहा तो आ मिलूगा। अपनी भाभी का खयाल रखना।'

कमलाकर घबराकर उठ खड़े हुए और बोले—'मगर आप जाते कहा हैं?'

बड़े भाई ने विषण्ण हँसी हँसकर कहा—'तीर्थाटन करूँगा। तुम्हारे काम के लिए मुझे शराब छूनी पड़ी!'

स्वर्ग की देवी

१

वसीलाल जसे अनेक उन्हाहरणा के कारण मैं इस नतीजे पर पहुचा हूँ कि सावजनिक सस्थाआ का पदाधिकारी हाना नतिक चरित्र की उच्चता का सुबूत नही। मतलब यह कि बसीलाल नगर-कमेटी के प्रधान थे और उनके जीवन की एक बहुत भयानक घटना का उल्लेख इस कहानी म होगा।

उस युवती के अतीत म कोई रहस्यपूण गाथा निहित नही थी। न वह सामाजिक अत्याचारा से सताई जाकर पतित हुई थी, और न किसी भगतिन कुटनी के फन्दे म पडकर ही इस रास्ते पर आई थी। असली अथ म मेमो को वेश्या नही कहा जा सकता। वह ता उस अभागी जाति की एक कुमारिका थी, जो अपनी अशिक्षा अपन दुर्भाग्य और अपन कुसस्कारो के कारण हमारे सभ्य समाज स बहुत पीछे छूट गई है, या बहुत ऊँचे रह गई है, और जिसकी ललनाएँ हमारे लालुप सभ्य-समाज की कामुकता का साधन बनती है।

वसीलाल एक बार ननीताल गए थे और वही किसी आसपास के गाँव स थोडे पैसो म, उसे खरीद लाय थे।

उस वक्त तो हिम्मत कर बठ और जब तक ननीताल म रहे तब तक भी उस हिम्मत म कमी न हुई पर जब घर आए तो अजब आफ्त म पडे। उस आफ्त की कल्पना तो हिम्मत स पहल भी की थी और एक

असाष्ट उपाय भी स्थिर कर लिया था, पर मद का उतार होने और हिम्मत के बाध मे माता खुलने पर जब घर लौटे, तो—उस उपाय की असायकना उन्हें खुद ही जँच गई।

बगीची के बँगले मे उसे ठहरा दिया। यही उपाय पहले सोचा गया था। पर इस उपाय स तो उनका अभीष्ट सिद्ध हुआ नही। यानी चौबीस घण्टे के भीतर-भीतर खबर शहर मे भी फैल गई, और घर भी जा पहुची।

२

तब, इस खबर स, घर म जो विभ्राट् उपस्थित हुआ, उसकी कुछ झाँकी लीजिए।

गहिणी से मुठभेड हुई। आखें अगारे बरसा रही थी, मुह फूला हुआ था, भौहें कमान बनी हुई थी। आते ही ले-दे, ले-दे शुरू हुई।

क्यो जी, कहाँ है वह ?'

मुह फक्! कौन ?'

कौन ?' मुह बनाकर नक्ल की गई—'जसे दूध पीते बच्चे हो, कुछ समझत ही नही !'

'आखिर '

'मैं पूछती हूँ, वह सौकन कहा है ?'

वाह ! कैसी सौक्न ?'

'वही, जिस नैनीताल से लाए हो ! हाय ! मैं अभागी मर क्यो नही जाती !' रोना शुरू हुआ, पर फौरन ही रुककर बोली —'क्यो जी, मुझे जहर क्या नही दे दिया छटाँक भर ? तब लाते उसे। मेरी छाती पर मूग दलने को ला बैठाया उस डायन को ! हाय ! मैं मर क्यो नही जाती।'

फिर रोना शुरू हो गया। जैसे क्रोधावेग शब्द प्रवाह मे निकलने का धय धारण नही कर सकता, और एकदम पानी बनकर फूटना चाहता है।

वसीलाल की आफत का क्या ठिकाना ! मुह पर सफेदी छा गई, आँखें स्थिर हो गई, जीभ बे-काबू हो गई। बुत की तरह खडे रह गए। मुँह से बोल न निकला।

गृहिणी का रोना फिर अकस्मात शान्त हो गया। दाँत पीसकर बोली—'तो बोलोगे नही अब ?

'क्या बोलू ?'

'बगीचे के बङ्गले मे रक्खा है न उस डायन को ?'

हाँ फिर ?'

अच्छा ! अच्छा !' गृहिणी ने हुँकार भरकर कहा—'अब तो या वह रहेगी, या मैं।'

सहसा बसीलाल को एक बात सूझ गई। झट बोले—'तुम्हारी आदत बडी वहमी है।'

गृहिणी का क्षोभ आवाज रोककर खडा हो गया। उन्होने अभिमान पूर्वक सिर हिला दिया।

देखो तो, यह बेचारी तो दुखिया है ! उस पर तुम ऐसा लाछन लगाती हो। राम ! राम ! और तुम मुझे ऐसा कमीना समझती हो ?

गृहिणी के घाव पर ऐसी कोई बात मरहम का काम कर सकती थी। क्षोभ हलका हुआ, और त्यौरी चढाकर बोली— क्या ? खुद ही तो कबूलते हो, और फिर कहते हो, ऐसा समझती हो, वैसा समझती हो।'

'क्या कबूलता हूँ, बसीलाल ने सँभलकर कहा—'आखिर बताओ तो, तुमने क्या समझा ? किस पाजी ने कान भर दिए ? क्या हुआ ?'

'हुआ मेरा सिर।' गृहिणी ने गरजकर कहा—'मरदो की जात बडी ब दद होती है। यह तो सुनती हूँ कि एक जूती टूट गई, दूसरी पहन ली एक औरत मर गई झट दूसरी ले आए। पर यह मेरे कैसे भाग फूट कि मैं जीती बैठी हूँ, और दूसरी को मेरी छाती पर बैठाने के लिए ले आए। आखिर मुझ मे क्या खोट आ गया ? मैंने क्या कसूर किया है ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा है जो मुझे जलाने के लिए सामान कर लाए ? इससे अच्छा तो यह होता कि पहले मुझे तोला भर संखिया खिला देते '

इतना सब कुछ कह डालने पर भी जब साँस टूटने का लक्षण न दिखाई दिया तो बसीलाल को टोकना पडा—'लेकिन कुछ मेरी भी सुनोगी या अपनी ही कहे जाओगी ?'

क्या कहते हो कहो !'

'पहले तो यह बताओ, किस पाजी ने तुम्हे चंग पर चढाया है ?'

'काले चोर ने ! तुम्हे मतलब ! चग पर चढाया है, चग पर ! या नही कहते, पोल खुल गई !'

'फिर वही ! अच्छा, तो तुम कहती हो, सो ठीक ! मैं कुछ नही बोलने का।'

'हाँ-हा, कहो, कहो। देखूँ, क्या बहाना बनाते हो।'

'जब तुम पहले ही बहाना समझती हो, तो अपनी ऐसी-तैसी कहूँ !'

'तो कुछ कहोगे भी ?'

'देखो वह तो एक दुखिया है !'

'हूँ। दुखिया तो है ही !'

गृहिणी के भाव से विचलित होकर बसीलाल कहने लगे—विचारी के माँ बाप मर गए थे, और कोई रक्षा करने वाला था नही, दाने-दाने की मोहताज थी।'

'बस, फिर तो तुम्हारी पाचो घी म थी।'

बसीलाल काफी साहस सग्रह कर चुके थे। तुनक्कर बोले—'बस, अब मैं ज्यादा बर्दाश्त नही कर सकता ! बात सुननी नही कि झट ले उडना ! जाओ, मैं कुछ नही कहना, मौज करो !'

पति के स्वर मे शुद्ध पुरुषत्व की गध पाकर गृहिणी दब गई। बोली, 'अच्छा, कहो, कहो !'

'नही, अब नही कहता !'

'अच्छा कहो भी बाबा !' क्रोध तेजी मे उडा जा रहा था !

बसीलाल ने कहना शुरू किया—'तो बस, तुम मेरी आदत जानती हो, किसी का दु ख मुझसे देखा नही जाता। मैं उसे अपने साथ ले आया !'

ता तुम्हें मिल कसे गई !'

'मिल कैसे गई ! वही के एक मित्र ले आए थे। बोले—'अगर कुछ प्रबन्ध कर सकें तो अच्छा है। ले जाइए, बेचारी का धर्म भ्रष्ट होने से बच जायगा। अगर किसी बदमाश के हाथ पड गई, तो टके-टके पर धर्म बचती फिरेगी।'

'बस मुझे दया आ गई, ले आया।'

'दया आ गई ? अच्छा, कहो, कहो !'

बस, यहाँ क्या ? ले आया।'

'अब क्या करोगे ? क्यों लाए हो।'

'अरे इतने नौकर-चाकर हैं, वह भी पड़ी रहेगी।'

हाँ !' कहकर गृहिणी रुक गई—'न, नौकर-चाकर पहले ही बहुतेरे हैं कुछ और प्रबन्ध करो।' मन में बोली—'मुझे पागल समझ लिया है, नौकरानी बनाकर लाए हैं, और बंगले में ठहराया है !

बसीलाल चिन्ता ग्रस्त होकर बोले—'भला और क्या प्रबंध हो सकता है ? यहीं पड़ी रहेगी। हमारा लेगी क्या ? रोटी-कपड़े में बेचारी क्या खर्च करा देगी !' फिर गृहिणी का चिबुक स्पर्श करके बोले—'रानीजी के लिए एक दासी तो होनी चाहिए ही।'

पर गृहिणी पुरुष चरित्र के इस लटके में न फँसी। हाथ हटाकर बोली—'न' मुझे दासी की जरूरत नहीं। बर्तन तो नौकर माँज ही लेता है, रोटी को महाराज है। और काम क्या है जो वह करेगी। न, कुछ और प्रबन्ध कर दो।'

बसीलाल तुनककर बोले—'वाह अच्छी रही ! और क्या प्रबन्ध हो सकता ?

क्यों ? किसी आश्रम में दाखिल करा दो !'

'आश्रम में ?' बसीलाल झिझके, फिर सिर घुमाकर बोले—'आश्रमों की कुछ न पूछो ! भला वहाँ दाखिल होकर किसी स्त्री के चरित्र की रक्षा हो सकती है ? राम राम ! आश्रमों का नाम लेने से ही मुझे तो नफरत है ! भला कैसे उसे आश्रम में भेज दूँ ?'

गृहिणी झल्लाकर बोली—तुमने उसका ठेका तो नहीं लिया है ? दुनिया में रात दिन इतनी औरतें बिगड़ती हैं किस किसके चरित्र की रक्षा कराओगे ?

बसीलाल ने शान्ति की मूर्ति बनकर कहा—'दुनिया-भर की तो नहीं पर देखो जिसका बोझ अपने कन्धे पर आ पड़ा है, उसको तो इस तरह जान-बूझकर कुएँ में धक्का नहीं दिया जाता। जरा सोचो तो, तुम तो मौज से रानी बनी बैठी हो, उस दुखिया के दिल पर क्या बीत रही होगी, जो मँझधार में बैठी है, जिसका कोई न दोस्त है, न मददगार !'

गृहिणी द्रवित हुई। सिर झुकाकर बोली—'तो बुरा मानो, चाहे भला घर में तो न रहने दूँगी !

बसीलाल मानो भारी चिन्ता में पड़कर बोले—घर में न रहने

दागी ? आखिर तुम्हारा बिगड क्या जाएगा ?'

'कुछ भी हो, घर म तो न रहने दूगी ।'

'खर ।

'खर क्या ?'

'वही रहेगी कुछ दिन, और क्या ।'

'कहाँ ? बगल म ?'

'हाँ, और कहाँ ?'

'वहाँ क्या करेगी ?' भृकुटि फिर तन गई ।

वसीलाल सिटपिटाकर बोले—'बँगला गन्दा पडा रहता है, झाड़ू-बाड़ू देती रहेगी बगीचे की भी सफाई रक्खेगी ।'

गृहिणी ने सिर हिलाकर कहा—'जी हाँ ।'

'जी हाँ क्या ?'

इस तरह कब तक चलेगा ?'

वसीलाल को अचानक एक बात सूझ गई। बोले—'देखो जी, मैं कोई लुच्चा लफङ्गा नहीं हूँ, जो इस तरह की जिरह करती हो। मैं तो किस तरह बात करता हूँ, और तुम जड ही नही जमने देती। आखिर मैं भी तो योगी नहीं हूँ जो तुम्हारी जली-कटी सुनकर चुप बैठा रहूँ ।'

गृहिणी मुस्कराकर बोली—'ओहो, रूठ भी गए! अरे भई, मैं क्या तुम्हें लुच्चा-लफङ्गा कहती हूँ। मैं तो यह पूछती हूँ कि आखिर इस तरह कब तक बँगले म रखखोगे ? दुनिया तो बडी बुरी है, जरा-सी देर म दूध-सी चादर काली हो जाती है ।'

'जी हाँ मैं समझता हूँ ।' बन्सीलाल ने कहा— मुझे अपनी इज्जत का आपसे ज्यादा खयाल है। आखिर काँग्रेस-कमेटी का प्रधान हूँ शहर का रईस हूँ तुम्हारी जसी देवी का स्वामी हूँ भला मुझे अपनी इज्जत का खयाल न होगा ?'

'हाँ, यही तो, आखिर क्या करोगे ?'

'बहुत जल्दी कोई अच्छा-सा लडका ढूढकर उसका ब्याह कर दूगा। जो कुछ मुझसे बनेगा सब कर दूगा। किसी सुपात्र के घर जायगी, तो सुख से रहेगी, और मुझे-तुम्हें दुआ देगी।'

सच कहते हो ?'

'धत्‌तुम्हारे की ! अब भी विश्वास न हुआ ?'

तब दोनों ने एक-दूसरे को देखा और दोनों हँस पड़े।

३

जागते और सोते पति पत्नी के दिमाग में क्या-क्या विचार चक्कर लगाते रहे, यह नहीं बताऊँगा, सुबह गजरदम वसीलाल बिना नहाए-धोए बगीची की तरफ चले।

वहाँ पहुँचते-पहुँचते दिन निकल आया। माली ने आकर बाग का दरवाजा खोला। भीतर घुसे। कमरा खुला हुआ था, और मेमो बिस्तर पर चिन्ता-मग्न बैठी थी। वसीलाल को देखा तो हर्षित होकर दौड़ पड़ी और उनके गले में लिपटकर रोने लगी।

पहले कहा जा चुका है कि मद उतर चुका था, तो भी मेमो का भाव देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा। बोले—'अरे ! क्या हुआ ? क्यों रोती हो ?

मेमो ने रोते रोते कहा—'तुम कहाँ चले गए थे ?'

'कहीं नहीं घर दुकान पर था। इतने दिन में आया था, काम ज्यादा था, वहीं सो गया।'

'तो मुझे भी वहीं बुला लेते !'

इस सरलता पर वसीलाल हँस पड़े—'क्या ! रात को कुछ तकलीफ हुई क्या ?'

'मुझे डर लगता था !'

'कहारी तो थी फिर क्या लगा डर ?'

'ऊँह ! वह बुड्ढी तो आते ही खर्राटे भरने लगी। मैंने उसे जगाया तो बड़ बड़ करने लगी। मुझे बहुत देर तक नींद नहीं आई। बड़ा डर लगा ! अब तुम मुझे छोड़कर कहीं मत जाना।'

'नहीं जाऊँगा।' मुँह से कह दिया, पर बड़े संकट में पड़े। कैसे रहेगी इज्जत ? कैसे छिपी रहेगी खबर ? कब तक बचे रहेंगे। गृहिणी के कोप से ?

तब दोनों पलंग पर बैठे। वसीलाल जो कहने आए थे उसे पेश करने का ढंग सोचने लगे। बोले—'असल में यह स्थान है भी निर्जन !'

ममा ने भोले मुँह से कहा—'हाँ।'

'तो और कहीं चलोगी ?'

ममा ने वैसे ही भोले मुँह से कहा—'जहाँ कहोगे, चली चलूँगी।'

इस भोलेपन पर बसीलाल का दिल पसीज गया। छाती में जैसे किसी ने घूसा मार दिया! अपने प्रति हृदय में घोर घृणा का भाव भर उठा। आह! कैसी नीचता है!

बसीलाल जो कहने आए थे, कह न सके।

दोनों वहीं नहाए-धोए, बाजार से खाना मँगवाकर दोनों ने खाया और कहारी को ममा के पास छोड़कर बसीलाल घर लौटे।

गृहिणी तनी हुई थी। देखते ही बोली—'कहाँ थे अब तक ?'

बसीलाल सहम गए और सिर खुजाकर बोले—'क्या बताऊँ, अजब मुसीबत में फँस गया हूँ।'

'कैसी मुसीबत ?'

'वही, उस लड़की की।'

गृहिणी ने नरम होकर कहा—'फिजूल की मुसीबत है। मैंने कहा तो था, निकाल निकूल दो किसी आश्रम में।'

'यह करना होता तो अब तक कर ही न देता।'

'तो फिर ? ढूँढ़ा है कोई लग्न रसूक लिए ?'

'इसी तलाश में हूँ। आज कई जगह चक्कर लगाया है। क्या बताऊँ, मैं चाहता हूँ, जल्दी इस बला से छुटकारा मिल जाय, जिससे बदनामी न होने पावे।'

गृहिणी ने विरक्ति-सूचित स्वर से कहा—'बस, रहने भी दो।'

बसीलाल चौंककर बोले—'क्या ?'

'भला, आजकल लड़कों का भी घाटा पड़ा है। सैकड़ों यों ही मारे मारे फिरते हैं।'

'अब भला किसी ऐरे-गैरे का कैसे हाथ पकड़ा दूँ ?'

'ऐरे-गैरे क्यों, कोई मुनासिब नहीं मिलेगा क्या ? लड़की है कैसी काली ?'

'नहीं, लड़की तो खूबसूरत है।'

गृहिणी न सिर हिलाकर कहा—'हूँ !'

वसीलाल झेंपकर बोले—'मतलब यह कि दोमी है। पहाड़ी लडकियाँ गोरी तो होती ही हैं।'

खैर ! तब तो लडका मिलना बिलकुल आसान है।'

वसीलाल न चिढकर कहा—'आसान है, तो तुम्ही बताओ कोई लडके जुटते फिरते हैं ?'

'मैं बता दू ?'

बताओ।

गृहिणी ने हँसकर कहा—'बिरजू से कर दो, बेचारे का घर बस जायेगा।

बिरजू गहिणी का चचेरा भाई है, तीस रुपये का नौकर है, अट्ठाईस बरस का हो जाने पर भी अविवाहित है।

वसीलाल न चिहुँककर कहा—'बिरजू से !'

क्यो ? क्या हुआ ? बेचारा बडी तकलीफ म है। रोटी-पानी का भी ठीक प्रब ध नही है।'

वसीलाल बाले—यह तो ठीक है, पर ब्याह कसे हो सकता है ?'

'क्या ?

'बिरादरी ?'

कौन पूछता है बिरादरी को, उसे तकलीफ है, तो कोई बिरादरी-वाला पूछने भी आता है कि तुम्हारे मुह मे कितने दाँत है ?'

वसीलाल कुछ न बाले।

गहिणी ने पूछा—'क्यो ? क्या सलाह रही ?'

तुम भी कैसी बातें करती हो। तीस रुपल्ली लाता है, खुद ही मुश्किल से कटती है उसे कहाँ से खिलायगा ?'

आहा ! तो काई राजा ढूढागे ?'

राजा नही, तो कोई खाता पीता तो हो !'

'वह क्या भुखमरा है ? कुछ वह लाता है, कुछ वह मेहनत मजदूरी करेगी, यो ही दिन कट जायँगे। जानते हो लडकी का भी तो कुछ भाग है।'

बंसीलाल ने देखा, इन तर्कों से पार न पा सकेंगे। इसलिये लापरवाही से बोले—'देखा जायेगा !' और टाल गए।

गृहिणी कुछ देर चुप खड़ी रही, फिर माथ पर हाथ मारकर बोली—'हाय मेरी तकदीर !'

४

गृहिणी अभी ज्यों-की-त्यों खड़ी थी कि विरजू ने कमरे में प्रवेश किया। मूछें बे-तरतीब, रङ्ग काला, चेहरा डरावना, आँखें कुछ लाल, गले में एक तावीज और दाहिने हाथ में एक मोटा लठ था। आते ही मूछों पर ताव देकर कहा—'जीजी, लग गया पता !'

'क्या ?'

'जीजा उसको खरीद कर लाये है, महीने-भर नैनीताल के होटल में उनके पास रही !'

गृहिणी को जैसे बिच्छू ने काटा। तड़पकर बोली—'सच ?'

'सच !'

गृहिणी के मुह से बोल न निकला। आँखों में आँसू छलछला आए।

'एक बात का पता और लगा है।'

'क्या ?'

'जीजा आज सुबह से वहीं थे।'

'हूँ।'

'दोपहर तक वहीं रहे ?'

'दोपहर तक वहीं रहे ?'

'हाँ, और बाजार से खाना मँगवाकर उसके साथ खाया।'

गृहिणी जैसे सिर से पैर तक जल उठी। सिर घुमाकर बोली—'अच्छी बात है !'

'मैं अब क्या करूँ ?'

'नौकरी पर जाओ, एक नागा तो कर चुके हो !'

'नागा की कोई परवाह नहीं जीजी, और जो कुछ कहो, सो करूँ।' बिरजू के स्वर में दीनता का भाव था।

'नहीं, अब कुछ नहीं। शाम को जल्दी आ जाना।'

'अच्छा, देख जीजी, मेरे भले का खयाल रखनेवाली एक तू ही बची

है ।'' वह दीनता या पैशाचिता का भाव जम फूटकर वह निकला ।

गहिणी न बिरजू की बात का मतलब समझा, और मन ही मन मुस्करा पड़ी ।

५

दोपहर के गये बसीलाल शाम को लौटे । चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और आँखों म चिन्ता का भाव घुसा हुआ था ।

इस बार गहिणी ने पूरे गजन-तजन के साथ मुकाबला करने की ठान ली थी । देखते ही उबल पड़ी— 'देखो जी, मैं साफ कह देती हूँ कि मुझे मारना ही चाहते हो तो जहर देकर मर डालो ।'

बसीलाल जद पड़ गये— क्या हुआ ? क्या हुआ ?''

क्या हुआ ! क्या हुआ !'' गहिणी न विकृत चेष्टा बनाकर कहा— 'मुझे तो धोखा देते हो किसी से ब्याह करा दूगा, दुखिया लड़की थी, दया करके ले आया यह है, वह है '

'धोखा ? कैसा धोखा ?

'कम नासमझ बन गए ! जसे कुछ जानते ही नहीं ! अजी मुझे सब पता लग गया है । वह सुबह कहते थे न, इधर-उधर मारे फिरते रहे ! ओफ्फो ! ऐसा झूठ !''

बसीलाल ने देखा, चुप हुए, और इज्जत गई । बोले—'क्या झूठ ? कैसा झूठ ? आखिर कुछ मुह से भी बोलोगी ? इस तरह बकने से क्या फायदा ?'

कहते थे जगह जगह मारा मारा फिरा ! यह नहीं कहते, दोपहर तक उस डायन से प्रेम की पहेलियाँ बुझाई थीं, उस चुड़ल के चोचले देखे थे, दोने मँगा मँगाकर दोनों ने मजे किए थे ! क्या ? और मुझ से कहते हैं आकर— मारा मारा फिरा था ।' वाह रे ! मर्दों की जात !''

किसने बहका दिया तुम्हें ?'' बसीलाल कह तो गए पर खुद ही समझ गए कि उनकी आवाज धोखा दे रही है ।

'किसने बहका दिया ! बहकाते है खुद, और दूसरों को झूठा बताते हैं !''

बसीलाल चुप रह गए ।

इस चुप ने सनसनी पदा कर दी। गहिणी के नेत्रा मे भय ने स्थान ले लिया। बाली—'तो कहो सच्ची बात बोलो !' दोना के दिल जार से धडक उठे।

एक बार मन हुआ, आत्म समपण कर दें, पर फिर सँभल गए। बोले—'बात यह है कि जिस घर मे चुगलखारो की पैठ हो जाती है, उसके नाश मे दर नहीं लगती !

गहिणी प्रभावित हुई।

'हमारे घर पर भी अब बुरे दिन आते दिखाई देत हैं। तुम्हारी अक्ल तो चली गई है हवा खाने, जो कुछ नौगा ने सिखा दिया, उसी पर विश्वास कर लिया। अपना आदमी तो बोलता है झूठ, और दूसरा कहता है सच !'

'ता तुम सच्चे हो ?'

'और नही क्या ?'

'तुम दोपहर तक उसके पास नही रहे ?

झूठ बात। मुश्किल से आधा घटे !'

बाजार से खाना मँगाकर नही खाया ?'

'कौन सुसरा कहता है ! फिजूल गुस्सा दिलाती हो !'

तो कहा न, नही मँगाया नही खाया ?'

मँगाया था, ता अपने लिए कि उसके लिए ? आखिर खाना तो वह खाती ही कि नहीं ?'

गहिणी क्षण भर चुप रही, फिर बोली—'अच्छा, अब तुम्हारे जी में क्या है ?'

बस, अब दा चार रोज मे कोई प्रबन्ध किए देता हूँ।'

देखोजी गहिणी ने हुँकार भरकर दढतापूवक कहा—'जैसे मैं कहती हूँ वसे करना हागा, नही तो, याद रक्खो, तुम्हारा वह फजीता होगा, जिसका नाम ?'

'धमकी तो रहने दो, जो कहना है, सो कहो ?'

दखा दो चार दिन तो दरकिनार, अब मैं दो चार घटे भी बर्दाश्त नहीं कर सकती ? तुम्हे फौरन उसका प्रबन्ध करना होगा ?

'फौरन ?'

'हाँ, अभी, चाहे किसी आश्रम म भेजो चाहे किसी से ब्याह कर दो; चाहे कुछ भी करो, अभी कर डालो।'

बसीलाल चिढकर बोले—'चाहे कुएँ म फेंक दू ?'

'हाँ, चाहे कुएँ म फेंक दो ?'

बशीलाल कई मिनट चुप खडे रहे। फिर बोले—'अच्छी बात है, अभी प्रबन्ध कर दूगा।'

'क्या करोगे ?'

'कुछ भी करूँ, चाहे कुएँ मे फेंक दूँ ?

'तुम्हारी मर्जी हो, सो करो।' गृहिणी ने कडा जी करके कह दिया।

बसीलाल ज्यो-के त्यो चल दिया।

दस मिनट बाद बिरजू आया। आते ही बोला—'उधर मे ही आ रहा हूँ जीजी, अभी तो वही है।'

'वही है न ? हूँ।'

'अब ?'

'तुमने खाना खाया कि नही ?'

'नही।'

'तो यही खा लो। फिर झटपट बगीची चले जाओ। तुम्हारे जीजा उधर ही गए हैं। उन पर नजर रखना कि क्या करते है।'

'अच्छा, अभी लो !' कहकर बिरजू चलने को तयार हुआ।

'खाना तो खा लो।'

'भूख नही है।' और वह सरपट बगीची की तरफ दौडा। बिरजू की व्यग्रता पर गृहिणी खडी खडी हँसती रही।

६

रात को दस बजे तक दोनो म से कोई न लौटा। दस बजे के बाद बसीलाल आए। गहिणी ने कुछ पछतावे के भाव स कहा—'बडी देर हो गई।'

बसीलाल गुर्राकर बोले—'तुम्हारी बला से !'

ग्रहिणी सहमकर चुप हो गई।

बसीलाल ने उबाल खाकर कहा—'मैंने वहा न अब इस घर का

नारा हान म देर नहीं है। तुम्ह तो चुगलखोरो ने ऐसा उँगलियो पर नचाया है कि न मेरी बात पर भरोसा है न मेरे दुख तकलीफ का खयाल ! तुम्हारे दिल म इतनी ममता नही, इतनी दया नही कि दिन-भर कडी धूप म मारा मारा फिरा, और शाम को आते ही पानी को पूछी, न दाने को, चला दिया हुक्म।'

ग्रहिणी मे लज्जित होकर कहा— तो मैंने यह थोडे ही कहा था कि रात के दस बजे तक वापस ही न लौटना।'

बसीलाल चुभते हुए स्वर म बोले—'दस बजे क्या अगर रात भर भी न आता, तुम्हें क्या परवा थी ! तुम्ह तो उस सौरन के भय न हैवान बना दिया था ! मैं चाहे मर भी जाता '

ग्रहिणी ने बात काटकर कहा—'अब तुम बडी-बडी बातो पर आने लगे।'

सच ही तो कहता हूँ ! याद रखना, तुम्हारे आज के आचरण न मेरे मन पर बडी ठेस लगाई है। मुझे दिन भर परेशान होने का इतना खयाल नही है जितना इस बात का कि तुम मुझे ऐसा नीच और चरित्रहीन समझती हो।

ग्रहिणी ने समझ लिया, सौरन का तीन-पाँच कुछ हो चुका है, तभी यह तडक-भडक है ! तो भी वह उनके मुह से सुनने को उत्सुक थी, क्या हुआ ! पर पूछे कैसे ? बसीलाल तो हाथ ही न रखने देते थे, और दूर से ही बिदके जाते थे !

स्त्री का आत्म समपण पुरुष पर विजय प्राप्ति का अकित अस्त्र है। गहिणी अत्यन्त खेद-पूण स्वर मे बोली—'अब तुम तो एकदम नाराज हो गए ! जानते नही, औरत का दिल कितना छोटा होता है ? उसे समाज न सब तरफ से जकड रक्खा है। एक जरा से घरे म, सिफ एक आदमी पर उसका थोडा सा अधिकार होता है। उस पर अपने अधिकार को अक्षुण्ण रखने के लिए औरत हमेशा प्रयत्नशील रहती है। जरा-सा मौका कहीं से नजर पडा कि औरत का दिल एक-साथ बिलबिला उठता है। आई म ? तुम मर्दों-जैसा उदार हृदय हम अभागिनी औरतें कहाँ से

बसीलाल ने पिघलन की उदारता दिखाई, पर कहे

कल्याण समझा। ज्यादा तनने की गुञ्जायश ही नहीं थी। बोले—'बातें बनाना तो खूब ही जानती हो! मिनट भर में आदमी को पानी बना देना तो तुम्हारे बाएँ हाथ का काम है।'

बस, सुलह हो गई।

तब भोजन का अनुरोध हुआ, आग्रह हुआ, और अन्त में प्रार्थना हुई। वसीलाल ने कपड़े बदले, और कुछ मिठाई खाकर पानी पिया।

जब दोनों जने चित्तरसारी में पहुँचे, तो गृहिणी के धैर्य का बाँध टूट ही पड़ा। पूछ बैठी—'क्या कर आए?'

'क्या?'

'क्या प्रबन्ध कर आए?'

'किसका?' माथे में बल पड़ गए।

'उसी सौरन का।' कहते-कहते गृहिणी हँस पड़ी।

वसीलाल ने कठोर स्वर में कहा—'कुएँ में डाल आया।'

गृहिणी ने गले में हाथ डालकर कहा—'उँह! फिर नाराज हो गए!'

वसीलाल ने क्षुब्ध बनकर कहा—'नाराज भी न होऊँ?'

'बताओ—सच्ची! तुम्हें मेरी कसम!'

'कहता तो हूँ, कुएँ में डाल आया।'

'वाह! बताते ही नहीं! अच्छा, जाने दो, अब नहीं पूछूँगी।' गृहिणी ने मुँह बना लिया।

'कुएँ में ही डालना है। सच, एक आश्रम में प्रविष्ट करा आया।'

'सच?'

'झूठ।'

'नहीं, मैं पूछती हूँ, कुछ बोली तो नहीं।'

वसीलाल ने द्रवित बनकर कहा—'क्या बोलती दुखिया, वह तो बेजबान गाय थी जिधर कसाई ले गया, चली गई।'

गृहिणी के दिल में दर्द हुआ। पर मुँह से कुछ न बोली।

वसीलाल ने भारी स्वर बनाकर कहा—'तुमने मुझ से बड़ा पाप कराया है मुझे बड़ा कष्ट हुआ है।'

वसीलाल को जैसा कष्ट हुआ था, वह तो आगे मालूम होगा, मगर

गृहिणी को वास्तव मे कष्ट हुआ। पर बला टली समझकर उसने उस कष्ट को प्रकट करना उचित न समझा, इसलिए प्रकरण बदल देने के खयाल से पूछा—'इतनी देर कैसे हो गई ? चार घंटे लगा दिए।'

वसीलाल ने सफाई से कहा—'कल कांग्रेस कमेटी की तरफ से शहर मे जुलूस निकलेगा उसी की तैयारी के लिए दफ्तर मे देर लग गई।'

'जलूस निकलेगा ? अच्छा !

'हां, चलना।

'चलूं ? लाठियां तो न पड़ेंगी ?'

बसीलाल ने बे-साचे जवाब दिया—'नही।

तब गृहिणी सुख की नीद सो गई।

६

बसीलाल दिन निकलने के पहले उठे, तो गृहिणी की आख खुल गई। चौंककर बोली—'अभी तो बहुत सवेरा है। अभी क्या उठते हो ?'

बसीलाल ने मिटपिटाकर कहा—'जरा काम है।'

'क्या काम है ?'

हां वह जुलूस निकलने वाला है न, उसी की व्यवस्था '

तो किस वक्त चलेगा जुलूस ?'

ठीक नौ बजे।' कहकर बसीलाल नीचे उतर गए। गृहिणी ने कहा—'मैं नौकर को लेकर आ जाऊंगी।'

बसीलाल ने सुना या नही, कह नही सकते।

दिन निकला। गृहिणी उठी कि हाथ मे लठ लिए बिज्जू आ मौजूद हुआ। शरीर मे और सिर मे तेल मले हुए था, आखो मे सुर्मा डाले हुए था, और चेहरे पर भय और भेद का मिश्रित भाव खेल रहा था।

आते ही इधर उधर देखा और बोला— जीजा तो गए न ?'

हां।'

जीजी वडी खराब खबर है।'

क्या !'

मैं रात को भी आया था, पर जीजा के सामने पडने की हिम्मत न हुई। मुमकिन है, उन्हे शक हो जाता इससे लौट गया।

गृहिणी ने व्यग्र होकर पूछा—'क्या बात है ?'

'जीजाजी ने कुछ कहा था ?'

आश्रम मे दाखिल करा आए है।'

बिरजू ठठाकर हँस पडा, और बोला—'ओफ्फो ! क्या चकमा दिया है !'

गृहिणी भय विह्वल होकर बोली—'क्यो ?'

'अजी, कसा आश्रम !'

'फिर ?

'मैं तीर की तरह बगीचे म जा पहुँचा।' बिरजू न अपना बहादुरी का हाल सुनाया—'वहा इस तरह छिपकर खडा हुआ कि म तो सब को दखू, और मुझे कोई न दखे। जीजाजी बहुत देर तक भीतर घुसे रहे। फिर माली के हाथ उन्होंने गाडी मँगाई, और दोना जने उसमे बठकर चले '

'दोनो जने ?'

हा, दोनो जने। तुम्हारा हुक्म था कि पीछा न छोडना, इसलिए मैंने पैसे का मोह छाड दिया, और एक तागे मे बठकर गाडी के पीछे चला। मोहल्ले के आगे दोनो उतर गए, मै भी उनके पीछे चला। वहा एक कमरा पहले से ही तयार था। कहारी भी मौजूद थी, एक नौकर भी आ गया था, सजावट, रोशनी, सब बातो से लस। बस, जीजाजी न वही उसे टिका दिया !'

गहिणी माना आकाश से गिरी। मुह से बोल न निकल सका।

'बस, मैं भी बाहर बठा उनका इतजार करता रहा। दस बजे के करीब जीजा बाहर आए। मैं भी घर तक उनके पीछे-पीछे आया। मुझे तो तुम्हारे हुक्म की तामील करनी थी !'

अरे ! तो क्या कांग्रेस-कमेटी की बात झूठ थी ?'

कसी ?

क्या वहाँ से आकर कांग्रेस-कमेटी मे भी गए थे ?

'न, सीधे घर आए थे। मैं तो रास्ते भर उनके पीछे रहा। जाते, ता मैं देखता नही मैंने एक मिनट को भी उनका पीछा नहा छोडा। मुझे तो जीजी तुम्हार हुक्म की

गृहिणी न घबराकर पूछा— तो वह उस कमर पर है ?

'हां, मैं उधर ही से होता हुआ आया हूँ, अभी तो वहीं है।'

'तुम रास्ता जानते हो ?'

'वाह ! मैं तो अभी होकर आया हूँ।'

गृहिणी झटपट भीतर गई, और कपड़े बदलकर बाहर आई। बोली—'बिरजू, चलो मुझे उस कमरे पर ले चलो।'

'तुम्हें ?' बिरजू ने अचरज और हर्ष से विह्वल होकर कहा—'कोचवान को आवाज दूं, गाड़ी ले आवेगा।'

'न, चलो बाजार से तांगा कर लेंगे।'

दोनों चल पड़े।

८

गृहिणी को अपनी खूबसूरती पर थोड़ा-बहुत घमण्ड था, पर मेमो को देखा, तो अवाक् रह गई। मेमो चाहे सगलदीप की परी न थी, पर ऐसी जरूर थी, जिसकी कल्पना गृहिणी ने न की थी।

जब कमरे में पहुँची, तो उसे गाल पर हाथ रक्खे बैठी पाया। शरीर पर महीन धोती थी, सिर के बाल खुले हुए थे, और मुंह छिप छिप कर रहा था।

उसने गृहिणी को देखा और सकुचाकर गर्दन झुका ली। न जाने क्या-क्या मसूबे लेकर गृहिणी घर से चली थी, देखते ही सब मिट्टी हो गए। आकर बैठी और धीरे-से बोली—'बीबी, तुम्हारा क्या नाम है।'

बोलते हुए मेमो का चेहरा लाल हो गया। जवाब दिया—मेमो।'

'मेमो !' हठात् पीछे खड़े हुए बिरजू के मुंह से निकल गया। 'मेमो ने नजर उठाकर उसकी तरफ देखा। बिरजू के हर्ष का क्या ठिकाना।

गृहिणी ने कहा—यहां कैसे आई ?'

'बाबू के साथ आई हूँ।'

'कहां रहती हो ?'

उसने गाँव का नाम बता दिया।

बाबूजी कहां गए ?'

'काम से गए हैं। कहते थे, दोपहर तक लौट आऊँगा

'तुम्हारे कौन होते हैं ?'

'कौन ?'

'बाबूजी !'

'कौन होते है !' उसने चकित होकर कहा—'बाबा ने उनके साथ मेरा ब्याह कर दिया था !'

गृहिणी की छाती में जैसे मुक्का लगा। तड़पकर बोली—'ब्याह कर दिया था ?'

'हाँ बाबूजी का हाथ पकड़ा दिया था। कहा था, हमेशा इनके कहे में रहना !'

गृहिणी ने ओठ काटकर कहा—'कब हुआ था ब्याह ?'

'एक महीना हुआ।'

'एक महीने से कहाँ रहती थी ?'

इस जिरह से मेमो कुछ विचलित हो उठी। थमाकर बोली—'जितने दिन बाबूजी नैनीताल रहे, वहाँ रही, अब यहाँ आए, तो यहाँ ले आए !'

मेमो के भोलेपन से गृहिणी द्रवित हुई, और पति के विश्वासघात से क्षुभित। दोनों भावों ने मिलकर आँसू लाने की तैयारी कर दी।

'तुम्हें मालूम है, बाबूजी का ब्याह हो चुका है ?'

मेमो आँखें फाड़कर देखने लगी।

बिरजू ने चिल्लाकर कहा—'अरी तुझे तो बाबूजी ने धोखा दिया है, यह खुद उनकी स्त्री बैठी है !'

मेमो ने दोनों हाथ जोड़कर गृहिणी को प्रणाम किया।

गृहिणी ने कहा—'बीबी, तुम्हें बड़ा धोखा हुआ !'

मेमो कुछ न बोली।

बिरजू ने कहा—अरी, तू बड़ी पागल है ! तू भी अब बाबूजी को अँगूठा दिखा दे।'

गृहिणी बोली—'देखो बीबी, उनकी तो मति मारी गई थी, जो तुम्हें चंग पर चढ़ा लाए। अब उन पर धड़ाधड़ जूतियाँ पड़ रही हैं, और वह अब तुमसे पिंड छुड़ाना चाहते हैं !'

मेमो ने सिर उठाकर गृहिणी को ताका। आँखों में आँसू भरे हुए थे।

गृहिणी को दया आ गई। पर दया करके अपना ही गला कसे काटती ? बोली—'बीबी, अब रोने से क्या फायदा ? अब तो तुम अपने लिए कोई ठिकाना ढूढो। कहो, तो मैं कोशिश करूँ।'

आँसू टपक पडे।

गहिणी ने कहा—'किसी खाते पीते, भले आदमी से ब्याह कर लो। जिन्दगी आराम से कट जायेगी। तुम्हारे बाप ने रुपये के लालच म तुम्हे कुएँ मे फेंक दिया था। खर, अब भी कुछ नही बिगडा।'

बिरजू के चेहरे का भाव देखकर हँसी आती थी।

मेमो ने धोती के पल्ले से आँखें पोछी।

गृहिणी निष्ठुर बनकर बोली—'बोलो, क्या इरादा है ? बाबूजी की आशा तो छोड दो। वह अब तुम्हारे पास भी न आवेंगे। अगर मेरी बात मानो, तो ब्याह कर लो, लडके का प्रबन्ध मैं कर दूगी। मेरी बात नही मानोगी, तो याद रखो, बडी दुदशा म पडोगी। तुम अभी लडकी हो, सुन्दर हो, नासमझ हो। दुनिया बडी बुरी है। इस जमाने म औरत की इज्जत '

मेमो इन सब बातो को नही समझ रही है। उसकी आँखें तो एक ही दृश्य देख रही हैं, उसके कान तो एक ही आवाज सुन रहे है, उसका मस्तिष्क तो एक ही विचार से ओत प्रोत है।

बिरजू बोल रहा था— जीजी की बात गाँठ बाँध ले। जमाना बडा बुरा है। स्त्रियो की इज्जत का भगवान् ही मालिक है। समझ ले, सोच ले, अभी कुछ नही बिगडा है, जीजी की बात बावन तोले पाव रत्ती की है।"

ममो ने सिर उठाकर गृहिणी को भर-नजर ताका, और फिर एकदम खडी हो गई।

आँसू निकलने बन्द हो गए।

गृहिणी ने पूछा—'क्यो बीबी ?'

मेमो ने दृढ स्वर मे कहा—'जाती हूँ।'

'कहाँ ?'

'अब इस शहर म नही रहूँगी।'

'कहाँ जाओगी ?'

'जहाँ सींग समायेंगे !'

गृहिणी दहल उठी। पर हाय र स्त्री हृदय ! उस सीमित राज्य के आधिपत्य की चिन्ता विवेक-अविवेक का ज्ञान भी भुला देती है !

मेमो ने कुछ न लिया वही धोती पहने चल पडी। जब दरवाजे पर पहुँची, तो गृहिणी ने पुकारकर कहा— बीबी, मेरी एक विनय है !'

मेमा पीछे फिरी। बिरजू का दिल जोर से धडकने लगा।

'इन्हें अपने साथ लेती जाओ। मेरी विनय है।' गृहिणी ने शरीर के तीन चार कीमती जेवर उतारकर रूमाल मे बाँध, और पोटली मेमो के हाथ म द दी।

मेमो ने स्थिर नेत्रो स गृहिणी का भाव देखा, और बिना बोले पोटली ले ली।

बिरजू का चेहरा फक् हो गया ! वहन पर उसके क्रोध का ठिकाना न था !

आखिरी कोशिश करने से बाज न आया। बोला—'अरी, क्यो पागल बनती है, कहाँ मारी-मारी फिरेगी ! चल, मेरे साथ चल आराम से रहियो।'

ममो बिना उसकी तरफ देखे निकल गई।

६

गहनो की पोटली हाथ मे लिए हुए मेमा चल पडी। शहर बिल्कुल नया था, भीड-भडक्का कभी देखा नही था, रास्ता जाना नही था, इसलिए आफत मे पड गई।

नुक्कड पर एक पनवाडी की दुकान थी। वहा खडे होकर उसने पूछा—'भाई, यह सडक किधर जाती है ?'

चौक।

'और यह ?'

पनवाडी ने सदिग्ध नेत्रो से ताककर कहा—'तुम्हें कहाँ जाना है ?

मेमो न फिर कोई प्रश्न न किया और चल दी।

पनवाडी की दुकान पर एक छल बठा था। झट पीछे हो लिया।

अगले मोड पर एक दूध वाले की दूकान थी। मेमो ने पूछा—'क्यों भाई, यह सड़क कहां जाती है।'

जमनाजी' और दूधवाला भौचक-सा देखता रह गया।

मेमो आगे बढी, तो दूधवाले ने झट दूकान बन्द की, और पीछे पीछे चल दिया।

मेमो बिना आगे-पीछे देखे चली जा रही थी। बहुत फेर खाकर, घूमती-घामती जमना किनारे पहुँची। हजारों आदमियों की भीड थी। जिधर निकल जाती थी, लोगों की भीड की-भीड खडी होकर देखने लगती थी।

हलवाई और छैल पीछे पीछे आ रहे थे।

मेमो किनारे किनारे चल दी। जहा पहुँचकर रुकी वहा कोई न था। जमना तेजी से बह रही थी। पानी बहुत गहरा था किनारे पर खडी होकर कुछ देर तक न-जाने क्या सोचती रही, फिर हाथ की पोटली को पूरे जोर से पानी में फेंक दिया।

तब उसने चारों तरफ देखा। खोजती थी, मरने में बाधा देनेवाला तो कोई नहीं है! पर एक नहीं दो थे, और दोनों दौडे आ रहे थे।

मेमो सहमकर दो कदम पीछे हट गई। तभी दोनों आनेवाले भी ठहर गए।

जो मेमो क्षण भर पहले जान देने को तैयार थी वही इन दोनों को देखकर भयभीत हो गई, और तेजी के साथ वापस लौटी। जब भीड मे आ मिली, तब सास ली।

उसके दिमाग में जिन विचारों का सघर्ष हो रहा था, उसका ठीक-ठीक चित्रण करना असम्भव है। बस, यही कहना चाहिए कि जो कुछ करती थी, जैसे स्वप्न में करती थी। आँखें स्थिर और डरावनी बन गई थीं, कान सुन्न और बहरे हो गए थे, चेहरा सफेद झक्क पड गया था, और अग-अग जैसे जवाब देने लगा था।

कुछ देर भीड में फिरती रही, फिर जिधर से आई थी, उधर ही चल दी।

छैल और हलवाई भी पीछे थे।

माम की पुतली की तरह सरवती चली जाती थी। दो सडकें पार कर चुकी थी कि सहसा कोई सामने आ खडा हुआ।

बिरजू था।

देखते ही बोला—'ओहो ! बडा परेशान हुआ ! शुक्र है, तुम मिल गई !'

ममो ने कुछ न सुना।

बिरजू बोला—'जीजी ने तुम्हें भेज तो दिया, पर पीछे बहुत पछताई, और मैंने भी बडा जोर दिया ! तब बोली जाओ उसे ढूँढो, जहाँ मिले, ले आओ।'

ममो ने अब भी कुछ न सुना।

बिरजू कहता रहा—'जीजी जुलूस में शामिल हो गई है चलो, वहीं से उन्हें ले लेंगे।'

मेमो तो बहरी हो गई थीं, उसने कुछ न सुना, न कुछ समझा। बिरजू ने अपनी बात समाप्त करके हाथ का संकेत किया, तो झट साथ हो ली।

यह दृश्य देखकर दोनों पीछा करने वाले निराश हुए, फिर भी पीछा छोड़ने को उनका जी न चाहा।

१०

जुलूस गुजर रहा था।

मामूली जुलूस था, पर चौक तक पहुँचते पहुँचते भीड बहुत बढ गई। सुबह का वक्त था, इतवार का दिन, इसलिए स्कूल-कॉलेज के लडके, व सरकारी दफ्तरों के बाबू और सुबह घूमने वाले सैलानी भी शामिल हो गए थे।

चिल्लाने से जोश क्या बढता है, इसका डाक्टरी विधान देने में हम अक्षम हैं। पर, देखा जाता है कि ज्यादा चिल्लाओ, तो स्फूर्ति, उत्तेजना और क्रोध का आविर्भाव हो ही जाता है। अब भारत के नौजवानों के पास और रह ही क्या गया है? आज आर्म्ज ऐक्ट की दया से अगुल स-डेढ अगुल चाकू रखना पाप है लाठी गई दफा 144 मे, घूसेबाजी हिन्दोस्तान के लिए बनी नहीं, बस, सिवा जबान के रह क्या गया ?

इसी जबान का भरपूर उपयोग किया जा रहा है और जुलूस काफी

ज्यादा उत्तेजित हो गया है।

आगे-आगे नौजवानो का दल है, उससे पीछे औरतें है, और सब के बाद घर-नरो की भीड !

वसीलाल अजीव फवन से, साक्षात् सदाचार और सयम की मूर्ति बने, इधर से-उधर दौडे-दौडे फिरते हैं !

सहसा एम०एस०पी० की मोटर आ निकली। अशान्ति का इमकान न था, इसलिए मोटर खुली हुई थी। पर नौजवानो का दल अपनी जीभ का उपयोग करने मे बाज न आया, और 'शेम-शेम' और 'डाउन-डाउन' की आवाज होने लगी !

मोटर पर एक छोटा यूनियन-जैक फहरा रहा था। एक मनचले ने आगे बढकर उस उतार फेंका।

एम० एस० पी० अधिकार-मद म चूर थे। लोगो के इस 'खेल' का तमाशा देखने और मातहतो पर अपनी बहादुरी का रौब जमाने के लिए ही उनका आगमन हुआ था। यूनियन जैक फटता देखा तो लाल हो गये, और भरा हुआ रिवाल्वर जेब से निकाल लिया।

उधर भी जोश था। रिवॉल्वर निकालना था कि शोर मच गया। किसी ने एक इट का टुकडा भी फेंक मारा। मोटर का शीशा तडक गया।

एस० एस० पी० ने पाच छ फायर किए, और मोटर दौडाकर कोत-वाली की तरफ चला।

कई आदमी जख्मी हो गए। जुलूस ठहर गया।

दस मिनट मे ही लठबन्द सिपाहियो से भरी दो लारिया आ पहुँचीं। सिपाही जैसे राज-भक्ति म उन्मत्त हो रहे थे। बडे साहब का अपमान किया गया था, और बडे साहब पिता-समान हैं ! दानो लारिया दम-भर मे खाली हो गईं, और सिपाही लोग लाठिया तान-तानकर दौडे।

लाठियाँ चली कि जाग हवा हो गया। जो सबसे ज्यादा चिल्लाते थे, सबसे पहले वही भागे। जो साहसी थे, वे खडे रह। कुछ गिर गए, कुछ जख्मी हुए कुछ ने जान दी !

सारा मार्चा आज ही फतह करना था ! बडे साहब का खुला

था ! फिर एसे शिकार मिल भी कहाँ सकते थे । बस, आग की सफ साफ हुई, तो औरतो का जत्था आ पडा ।

यह सकते हैं कि औरतो ने जुलूस की लाज रख ली । कुछ तो पीछे को सरकी, बाकी न हिली, न झुकी, न भागी ।

इस दृढता स सिपाही भी दहल गए । कुछ रुक गए, कुछ के हाथ उठे ही रह गए, कुछ काना फूसी करने लगे ।

फिर भी उस दो लारिया की पल्टन मे स कुछ वीर राजभक्ता न हाथ की करामात दिखानी शुरू कर ही दी ।

गहिणी इस जत्थ की अभिनत्री थी । कुछ देर तो किंकर्तव्य विमूढ होकर खडी रह गई, तब सहसा दौडकर उधर चली, जिधर सिपाही औरता पर लाठी चला रहे थे ।

'यही है ! यही है !' उसे देखकर सिपाही चिल्लाया—'यही विष की गाँठ है ! हुसैनअली, इस लेना !'

हुसनअली दाँत पीसकर और दोना हाथो से लाठी तानकर उसकी तरफ दौडा । गहिणी के माथे पर पसीना आ गया, पर हिम्मत ने साथ न छोडा । स्थिर खडी रही ।

सहसा बगल म कोई औरत चिल्लाई और झपटकर गहिणी क आगे आ गई । हुसनअली की लाठी चल चुकी थी आकर सीधी औरत के सिर पर वटी । बेचारी ने 'हाय' भी न की, और गिर पडी ।

साथ ही तीन चार आदमी लेना-लेना' चिल्लाते हुए पीछे से आए । इनकी जबान 'शेम शेम' नही चिल्ला रही थी, इनक हाथो म थी लाठियाँ ।

एक छल था, दूसरा हलवाई और तीसरा बिरजू ।

छल ने चिल्लाकर कहा—'अरे नामर्दो ! हिंदुस्तान के मद मर नही गए ह ! खबरदार ! अगर औरता पर हाथ चलाया ! अगर कुछ हिम्मत है तो आ जाओ आगे !

सिपाहियो की राज भक्ति खतम हो गई और हुसनअली और उसक साथी बडे साहब के हुक्म को भूलकर उल्टे-पाँव भागे ।

पर गहिणी के आगे आने वाली औरत दम तोड चुकी थी ।

गृहिणी फौरन जमीन पर बैठ गई, और उसकी छाती पर हाथ रखा। सिर फट गया था, और सब समाप्त हो चुका था।

इसी समय बहुत से आदमी उस जगह आ गए। बसीलाल भी उन्ही मे थे। एक स्त्री को जमीन पर पडी देखकर उन्होने व्यस्त होकर गृहिणी स पूछा—'ज्यादा चोट तो नही लगी ?'

किसी ने कह दिया—'मर गई।'

बसीलाल न पूछा—'कौन थी ?'

और भी बहुतो ने पूछा—'कौन थी ?'

गहिणी ने सिर उठाकर कहा— स्वग की देवी।'

बिरजू सिर धुन रहा था, और छैल और हलवाई लाठिया फेंककर वापस जा रहे थे।

सयोग

१

ब्रजमोहन सुल्तान-जिले के एक पटवारी का लडका था। जब उसने मटिक पास किया, और बाप के धीरज और प्यार का बाध एकबारगी टूट-पडने को हुआ, तो एक दिन वह घर रफू चक्कर हो गया।

बात अलकार म कह दी गई। आप न समझे हो, तो अचरज नही। मतलब ब्याह से था। जाने क्या धुन उस अठारह बरस के लडके को समाई कि ब्याह से एकदम इनकार कर बैठा। वजह बहुतो ने पूछी, और बहुतो ने जानी। पर सब अलग-अलग पूछा जाता, तो पता लग जाता कि सबको अलग अलग वजह बताई गई।

एक से तो कहा—'गुलाम देश मे ब्याह करना गुनाह है।' एक से कहा—'हर एक नौजवान को देश हित के लिए जान दे देनी चाहिए।' एक से कहा—'ब्याह करना पतन का कारण है।' एक से यह भी कहा—'किसी मुसलमान स्त्री से ब्याह करूँगा।' पर यह जान पडता है, हँसी म कह दिया गया था, क्योकि एक से यह भी बताया कि 'बमबाजो की मडली मे शामिल होकर फासी चढूगा।'

इस वचित्र्य-पूर्ण युग मे लडके का यह हठ देख, वृद्ध पिता बडे असम जस मे पडे। लाडो म पला था, प्यार मे पढाया था, और बडी आशा से एक एक दिन बताया था। मा छोडकर मर गई थी और कोई था नही। उम्र काफी बीत चुकी थी इसलिए फिर बूढे ने ब्याह न किया। यानी सारा स्नेह सारी आशा और वृद्धावस्था के विछोह के सारे आँसू उसने लडके पर न्योछावर कर दिए। अब जब आशा म फूल आया, स्नेह रस मे

पवाव दिखाई दिया, और बिछाह की कमक पर मरहम लगा, तो अकस्मात यह आघात पाकर बूढे का दिल एक बारगी हाहाकार कर उठा !

जसे उनकी सारी निधि खाई जा रही थी, मुह बनाकर बूढे ने सुबह न शाम तक परेशान होकर घूमना शुरू किया। लडके से कुछ कहन की हिम्मत न पडती थी इसलिए गली के, मोहल्ले के कस्बे के, स्कूल के—लडके सभी साथियो के पास चक्कर लगा आया, और रो-रोकर अपनी कष्ट-कहानी सुना आया।

दया इस पर सबको आ गई और खच चूकि कुछ होना नही था, इसलिए कोई भी इस दया का प्रदशन करके अनायास ही बूढे की सहानुभूति प्राप्त करने से न चूका। इधर जब ब्रजमोहन पर एकबारगी सब तरफ से बौछार पडी, तो एक दिन वह बावला लडका अकेला घर छोडकर चल दिया !

२

चलत-चलत दिल्ली पहुँचा और रेलवे मे चालीस रुपए का मुलाजिम हो गया।

एक साफ मोहल्ले मे छ रुपए महीन का एक कमरा किराए पर लिया, और मौज से वक्त काटने लगा।

इस लडके क लिए मैंने जो 'बावला' विशेषण का प्रयोग किया है, वह मालूम आन ठीक है। अठारह बरस का हो गया था, रेखें फूटने लगी थी, रग निखमित हो रहा था बातचीत का ढग गम्भीर हो गया था, और शरीर बलिष्ट और शानदार था पर प्रकृति कुछ अजीब तरह की थी। इस अजीबपन का कुछ परिचय तो आपने पाया ही है, बाकी आगे पावेंगे।

समा मन्दे का था, इसलिए चालीस रुपए अकेले आदमी के लिए काफी से ज्यादा थे। उसके खच का हिसाब चाहे जो उससे पूछ सकता था। छ रुपए किराया एक के गहूँ, तीन का घी, एक का मसाला और एक की दाल। बारह तो यह हुए। एक रुपया कपडो की धुलाई एक का तेल-साबुन रुपया महीना जूते की औसत पडती थी, ज्यादा-से ज्यादा दो तीन रुपए दूध वगैरा म जाते थे। दो रुपए और मुनफरिक का खच लगा लीजिए। इस

तरह कुल बीस रुपए का खर्च था।

बाकी बीस रुपए जो बचत थे, उनका उपयोग भी सुनिए। पाँच रुपए तो पतंग-डोर में खर्च होते थे, और पाँच थिएटर बायस्कोप में। दस रुपए में कभी कपड़े बनवा लेना था, कभी और कुछ सामान खरीद लेना था, और अक्सर बचे हुए रुपया को गली में बच्चों को मिठाई बाँटने में खर्च कर डालता था।

ड्यूटी से छुट्टी पाकर आता, तो घर में पड़ा रहता या बाग में, दरिया किनारे, थियेटर सिनेमा में वक्त काट देता था। जो दो एक नए मित्र बन गए थे, और जिन्होंने दुनियादारी सीखी थी, वे उसकी दिन-चर्या सुनते और अचरज करते और उसकी लापरवाही और पैसे के अपव्यय पर उसे समझाते भी।

पर व्रजमोहन सबकी सलाह को हँसकर टाल देता। इसी तरह दिन बीत रहे थे।

३

उस दिन इतवार था, और छुट्टी थी। व्रजमोहन सात बजे सोकर उठा। कमीज गले में डाली और घूमने चल दिया।

गर्मी पड़ने लगी थी। सूरज निकल आया था। धूप फैल गई थी। व्रजमोहन छड़ी हिलाता और गुनगुनाता हुआ शहर के बाहर निकल गया। जिस रास्ते पर वह था, वह नई दिल्ली या रायसीना की तरफ जाता था।

यह प्याऊ आई यह पुल आया, यह 'कनॉट प्लेस' आया, यह हनुमानजी का मन्दिर रहा और अन्त में वह जंतर मंतर के पास पहुँचकर रुका।

गोरा चेहरा कश्मीरी था। माथे पर धूप की किरणें लोट रही थीं, और 'बावला' व्रजमोहन अपने अतीत और भविष्य से बेखबर, छड़ी हिलाता और गुनगुनाता हुआ, जंतर-मंतर के पास जाकर घास पर लेट गया।

किसी खास बात को लेकर विचार में पड़ जाने की उसकी आदत नहीं थी। जो चीज सामने आई, उसे देखा, उसका भाव मन की आँख के आगे

बँधा, फिर दूसरी चीज देखी, और पिछला भाव और विचार एकदम लुप्त हो गया।

यह जतर मतर है, क्या कारीगरी है! यह शान्ति-निवास है, क्या गालाई देकर कटावदार तरीके से बनाया गया ह। यह थाना है, बेशुमार रुपया खच कर दिया गया है! वह एसेम्बली हॉल है, खम्भे कैसे सुदर लगते ह! ये ठेकेदारो की कोठिया है, इत्यादि।

ब्रजमाहन जब वापस लौटा ता एक कुत्ता उसके साथ हा लिया।

कह सकते है, यही से हमारी कहानी शुरू हुई।

४

जाती बार जसे गया था, आती बार भा वसे ही आया। वही लापरवाही की चाल वही छडी घुमाना, और वही रास्ते-भर गुनगुनाते आना।

जब घर पहुँचा, तो कुत्ता मूका, और उसने पीछे फिरकर देखा।

काले रग का कुत्ता था। मुह लोमडी जैसा, बदन सुता हुआ और सुडौल, सब तरफ लम्बे-लम्बे रेशम मे बाल, पजो पर हल्की सफेद रग की चित्तिया, पूछ जरा सी, जसे कुछ हिस्सा काट दिया गया हो, लाल रग की जीभ बाहर निकाले हाफ रहा था।

गले मे चमडे का पट्टा था, और पट्टे पर छोटे से धातु-पत्र पर कुछ अक्षर खुदे हुए थे।

ब्रजमोहन पीछे फिरा कि गली का हलवाई और घोसी का लडका दात फाडकर हँस पडे—'ओहो! बाबू साहब, कुत्ता-कुत्ता।

बावला ब्रजमाहन शमा सा गया। लौटकर कुत्ते के पास पहुँचा। कुत्ता स्नेहपूण नेत्रो से उसे ताकने लगा।

घोसी का लडका बोला—'कहिए बाबूजी, इस कहा से पकड लाए ?'

हलवाई भी ताली बजाकर बाल उठा—'बाबूजी, कुत्ता तो बडा लाजवाब है!'

ब्रजमोहन लाज स गड गया। कुछ दर चुप खडा रहा, बोला—'लाजवाब है ता तुम ले लो!'

कहकर वह झटपट घर म घुस गया और नहा-धोकर छुट्टी का पूण सदुपयोग करने क लिए बाजार चल दिया।

घूम-घामकर बारह बजे लौटा। उस दिन बेतरह आलस न सता रखा था और एक दूकान पर ताजे-ताजे पराठे सिक रहे थे, इसलिए वहीं बैठ गया और पेट भरकर उठा। लौटकर देखा, घर के आगे भीड इकट्ठी हो रही है। हलवाई और घोसी का लडका भी भीड म खडे थे। कोई मदारी का तमाशा हो रहा था क्या । व्रजमोहन कोई स्पष्ट कल्पना न कर सका कि हलवाई और घोसी के लडके की नजर एक साथ उस पर पड गई और दोनो एक साथ बोल उठे—'लो, बाबूजी खुद ही आ गए।'

सब पलट पडे और बीच मे रास्ता हुआ, तो व्रजमोहन ने देखा, कुत्ता ।

हा, सुबह जो कुत्ता रायसीने से साथ चला आया था, वही इस वक्त भीड के बीच म बैठा तमाशा बना हुआ था।

जब इतने आदमियो ने एक साथ उसकी तरफ देखा तो व्रजमोहन के सकोच का क्या ठिकाना ! चेहरे पर हवाइया-सी उडने लगी और गला रुक गया।

घोसी के लडके ने गले के ताबीज को अँगूठे और तजनी से मसलते हुए कहा—'अजी बाबूजी, यह कुत्ता ।'

हलवाई चिन्ता समुद्र मे डूबते हुए सिर खुजाकर और माथा झुकाकर बीच ही मे बोला—'अजी बाबूजी, इस कुत्ते ने '

अब व्रजमोहन को बोलना पडा—'क्यो हुआ ?'

घोसी का लडका हँसकर बोला—'अजी आप कहाँ से ले आए इसे ? किसका है यह ?'

हलवाई का माथा ऊपर न उठा, न बोल निकला।

व्रजमोहन व्यग्र होकर बाला— कहाँ से ल आया ? लाया तो कही से नही !

घोसी का लडका भीड के आदमियो की तरफ सैन देकर हँस पडा। हलाई का माथा अब भी गडा रहा।

व्रजमोहन इस सकट से घबरा गया। हलवाई से बोला— क्या मामला है,जी ?'

अब हलवाई ने सिर को हरकत दी और जसे कुएँ म बैठा हो, इस

तरह बोला--'जी बाबूजी, मैं तो समझा था, कुत्ता आपका है।'

'मेरा ? वाह भई, मेरा कहा स आया ?'

जी हा, पीछे मालूम हुआ। एक आदमी था, कहने लगा—'यह तो रायसीने के एक बाबू साहब का कुत्ता है, यहा कसे आ गया ?' मैंने आपका नाम लिया, बाबूजी, वह तो सिर हो गया। कहने लगा—तुम बहाना बनाते हा तुम इसे चुराकर लाए हो। मैं अभी जाकर पुलिस को खबर देता हूँ।' फिर उसने इसके गले को पट्टा और नम्बर दिखाया।'

घोसी के लडके ने टोककर कहा—'अरे साहब वह तो मेरा शेर सिर पर चढ गया। जब मैंने कहा कि मेरे सामन कुत्ता बाबू साहब के साथ आया था उन्होने खरीद लिया होगा ता साहब, वह तो मर भी पीछे पड गया। बोला--'अच्छा बे, तरी भी खबर ली जायगी।' मैंने कहा—'भाई मरे ऊपर किस बात का नजला है?' मगर साहब, वह भला किसकी सुनता है, वह तो जसे मरने मारन का इरादा करके आया था।'

किसी ने भीड मे स कहा—'अर भाई, तुम क्या जानो, वह ता सी० आई० डी० का आदमी था।

हलवाई मानो सारे नाटक का सूत्रधार बनकर बाला—'जी हा, मुझसे खुद उसी ने कह दिया था। धीरे स बोला—'देखा मुन्ना, मैं खुफिया का आदमी हूँ। याद रखना, जरा ची चपड की तो बँधवा दूगा।' साहब, उसे खुश करने के लिए मुझे तो अपनी दो दिन की कमाई भेंट करनी पडेगी।' हूँ। साले के कट कटके निकलेगी।'

हलवाई ने ऐसा मुह बना लिया, जसे अभी रा पडेगा।

घोसी के लडके ने उँगली से तावीज हिलाते हुए कहा—'अरे ता, घबराता क्यो है, वह तो बाबूजी से मिल ही जायेगी।'

बाबूजी ने चौंककर कहा—'क्या ? क्या है ?'

हलवाई बोला—'साहब, इस कुत्ते को '

'हा।'

इस आप ले जाइए, मैंन भर पाया।'

घोसी का लडका बाला—'और जो कुछ इसका खच हुआ है, वह भी

घूम-घामकर बारह बजे लौटा। उस दिन केतरह आलस न सता रखा था और एक दूकान पर ताजे-ताजे पराठे सिक रहे थे, इसलिए वहीं बैठ गया और पेट भरकर उठा। लौटकर देखा, घर के आगे भीड इकट्ठा हो रही है। हलवाई और घोसी का लडका भी भीड में खडे थे। कोई मदारी का तमाशा हो रहा था क्या। व्रजमोहन कोई स्पष्ट कल्पना न कर सका कि हलवाई और घोसी के लडके की नजर एक साथ उस पर पड गई और दोनो एक साथ बोल उठे—'लो, बाबूजी खुद ही आ गए।'

सब परट पडे और बीच मे रास्ता हुआ, तो व्रजमोहन ने देखा, कुत्ता।

हाँ, सुबह जो कुत्ता रायसीने से साथ चला आया था, वही इस वक्त भीड के बीच म बैठा तमाशा बना हुआ था।

जब इतने आदमियो ने एक साथ उसकी तरफ देखा तो व्रजमोहन के सकोच का क्या ठिकाना! चेहरे पर हवाइयाँ सी उडने लगी और गला रुक गया।

घोसी के लडके ने गले के तावीज को अँगूठे और तर्जनी से मसलते हुए कहा—'अजी बाबूजी, यह कुत्ता।'

हलवाई चिन्ता-समुद्र मे डूबते हुए सिर खुजाकर और माथा झुकाकर बीच ही मे बोला—'अजी बाबूजी, इस कुत्ते ने'

अब व्रजमोहन को बोलना पडा—'क्यो हुआ?'

घोसी का लडका हँसकर बोला—'अजी, आप कहाँ से ले आए इसे? किसका है यह?'

हलवाई का माथा ऊपर न उठा, न बोल निकला।

व्रजमोहन व्यग्र होकर बोला—'कहाँ से ले आया? लाया तो कहीं से नहीं!'

घोसी का लडका भीड के आदमियो की तरफ सन देकर हँस पडा। हलवाई का माथा अब भी गडा रहा।

व्रजमोहन इस सकट से घबरा गया। हलवाई से बोला—'क्या मामला है, जी?'

अब हलवाई ने सिर को हरकत दी और जस कुएँ म बैठा हो इस

तरह वाला--'जी बाबूजी मैं तो समझा था, कुत्ता आपका है।'

मेरा ? वाह भई, मेरा कहा से आया ?'

जी हा, पीछे मालूम हुआ। एक आदमी था कहने लगा—'यह तो रायसीने के एक बाबू साहब का कुत्ता है, यहा कसे आ गया ?' मैंने आपका नाम लिया, बाबूजी, वह तो सिर हो गया। कहन लगा—'तुम बहाना बनात हो, तुम इस चुराकर लाए हो। मैं अभी जाकर पुलिस को खबर देता हूँ !' फिर उसने इसके गले को पट्टा और नम्बर दिखाया।'

घोसी के लडके ने टाककर कहा—'अरे साहब वह तो मेरा शेर सिर पर चढ गया। जब मैंने कहा कि मेरे सामने कुत्ता बाबू साहब के साथ आया था उन्होंने खरीद लिया होगा, तो साहब, वह तो मेरे भी पीछे पड गया ! बोला—'अच्छा बे, तेरी भी खबर ली जायगी।' मैंने कहा—'भाई, मेरे ऊपर किस बात का नजला है?' मगर साहब, वह भला किसकी सुनता है, वह तो जसे मरने मारने का इरादा करके आया था !'

किसी ने भीड म से कहा—'अरे भाई, तुम क्या जानो, वह तो सी० आई० डी० का आदमी था।

हलवाई मानो सारे नाटक का सूत्रधार बनकर बोला—'जी हाँ, मुझसे खुद उसी ने कह दिया था। धीरे से बोला—'देखा सुना, मैं खुफिया का आदमी हूँ। याद रखना, जरा भी चपड की तो बँधवा दूगा !' साहब, उसे खुश करने के लिए मुझे तो अपनी दो दिन की कमाई भेंट करनी पडेगी।' हूँ ! साले के कट-कटके निकलेगी !'

हलवाई ने ऐसा मुह बना लिया, जसे अभी रो पडेगा।

घोसी के लडके ने उगली से तावीज हिलाते हुए कहा—'अरे ना, घबराता क्यो है, वह तो बाबूजी से मिल ही जायेगी।'

बाबूजी ने चौंककर कहा—'क्या ? क्या है ?'

हलवाई बोला—'साहब, इस कुत्ते को '

हाँ।'

इसे आप ले जाइए, मैंने भर पाया।'

घोसी का लडका बोला— और जो कुछ इसका खर्च हुआ है, वह भी

दे दीजिए। बाबूजी, आपके तो कुछ मुश्किल नहीं होगा, हम लोग गरीब आदमी हैं।'

कहता-कहता वह अपनी अयाचित वकालत के बदले में हलवाई के मुह पर एहसान का भाव देखने के लिए उसकी तरफ घूमा।

व्रजमोहन ने परेशान होकर कहा—'पर तो ऐसा खर्च क्या हो गया!'

चेहरे का सन्ताप और हास्य छिपाने के लिए हलवाई ने सिर झुका लिया, और बोला—'अजी, कुछ नहीं बाबूजी, सच कहूँ तो ऐसा कुछ नहीं हुआ!'

'आखिर? कुछ तो?'

'अजी, कुछ हो भी। यह (धोबी का लड़का) तो पागल है!'

'बोलो, बोलो, क्या सच हुआ है, देर होती है।'

हलवाई ने जैसे बड़े सङ्कोच में डूबकर कहा—अठन्नी!'

व्रजमोहन ने झट अठन्नी निकालकर फेंक दी और कुत्ते का पट्टा पकड़कर घर में घुसा।

५

कुत्ता हाँफ रहा था। जीभ बाहर निकली हुई थी। आँखों में आँसू भरे हुए थे। पेट चिपक गया था। भीतर जाकर व्रजमोहन दाँत पीसकर बोला—'आह! जालिमों ने गरीब को भूखा ही मार डाला था!' तब वह हलवाई से दूध मिठाई लाया और सकोरे में भिगाकर कुत्ते के आगे रखी। वह तो देखते ही लपका और भरपूर तेजी से दूध मिठाई का सकोरा खाली करना शुरू कर दिया।

जब वह पेट-पूजा में व्यस्त था, तो व्रजमोहन ध्यान से उसके पट्टे को देख रहा था। सफेद निकिल का छोटा-सा टुकड़ा पट्टे में बधा हुआ था। अंग्रेजी अक्षरों में डी० एम० सी० 84 उस पर खुदा हुआ था। मतलब हुआ—दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी। व्रजमोहन ने सोचा, जरूर कमेटी में इसके मालिक का पता मिल जाएगा। वहीं जाकर पूछने से पता चलेगा।

पर इतवार का दिन था। म्युनिसिपलिटी का दफ्तर बन्द था। क्या किया जाय ? कुत्ता है तो खूबसूरत, क्यो न अपने पास ही रहने दे ? पर न, कमेटी मे नम्बर लिखा हुआ है, इसका मालिक पुलिस मे रिपाट करगा, अखबारो मे हुलिया निकालेगा। कुत्ता कीमती है, मुमकिन है, खाज-पूछ होने लगे। बहुत-से आदमी इसे देख चुके और फिर वह खुफिया पुलिस का आदमी । न, ऐसा नही हो सकता। और फिर करना भी क्या है ? कौन उसकी सेवा-टहल करेगा ? कौन उसे हवा खिलाने ले जायगा ? कौन उसके खान पीन की चिता रखेगा ?

पर किया क्या जाय ? कमेटी का दफ्तर तो आज बन्द है। क्या जान आज ही इसका मालिक रिपोट कर दे ! और, पुलिस को पता चल जाय ! फिर तो लेने के देन पड जाएग, यहा परदस म भला कौन मरा जामिन बनगा ?

एक बार जी म आई, किम झझट म पडे जी, जाकर बाजार मे छोड दे। क्या मतलब है किसी से, चाहे जहा जाय।

पर फिर पुलिस । अगर पुलिस मे रिपाट की गई, और तयकीकात हुई, तो पता लगाना क्या दुश्वर है ? आखिर इतने आदमियो न देखा है। सी० आई० डी० का आदमी । फिर क्या होगा ? कौन सुनेगा ? सभी समझेंग बाबू साहब ने किसी के हाथ बेच दिया है। जानवर कीमती है। सहज ही म १०० ५० रुपये मिल सकते हैं। चालीस रुपय के नौकर की नीयत डुलाने के लिए १०० ५० रुपए की रकम मामूली से ज्यादा है।

कुत्ता दूध मिठाई खत्म करके सकोरा चाट रहा था। ब्रजमोहन तब तक कोई उपाय स्थिर न कर पाया।

सहसा लठ हाथ मे लिए घोसी का लडका हँसता हुआ घर म आ गया। आते ही कुत्ते की तरफ देखकर बोला —'ओहो! सब चट कर गया साला ! क्यो बे आया मिठाई म कुछ मजा ! साले की आँतें कुलमुला उठी होगी ! बाबूजी, यह ता अच्छा य बवाल बँधा जान को, एक रुपय पर बीन गई। अठन्नी हलवाई का दे दी, अठन्नी का '

ब्रजमोहन न कुछ जवाब न दिया। बातूनी घोसी के लडके की बात

उसने पूरी सुनी भी, इसमें सन्देह है।

उसने फिर कहा—'तो बाबूजी, इसे अपने पास ही रखोगे ?'

ब्रजमोहन ने सिर उठाकर कहा—'अपने पास रखकर क्या करूंगा ?'

'अच्छा है, चौकीदारी करेगा।'

'न भाई, मेरे पास ऐसा कौन खजाना धरा है, जिसकी चौकीदारी की जरूरत है ! यहां तो ऐसा कोई आदमी भी नहीं है, जो इसकी सेवा टहल कर सके।'

'फिर ? क्या कराेगे !'

'यही सोच रहा हूँ।' ब्रजमोहन ने परेशान होकर जवाब दिया।

'सोचने की क्या बात है, जब आप रखना नहीं चाहते, तो जमा कर आइए।'

'जमा करा आऊँ, कहां ? कमेटी तो आज बन्द है।'

'क्यों ? ओहो ! याद आया, आज इतवार है।'

'हां, अब इसी चक्कर में हूँ। करूं तो क्या करूं क्या, कहीं ऐसा न हो कि इसका मालिक पुलिस में खबर कर दे और तहकीकात होने लगे। अगर ऐसा हुआ, तो फिजूल का फजीता हो जायगा।'

'तो क्या फजीते की क्या बात है, आपने सुसरे की चोरी थोड़े ही की है !'

'भाई, यह जमाना ऐसा ही है, साहू को चोर बना दिया जाता है।'

'तो आप चोर बनें ही क्यों, जाकर जमा करा आइए।'

'जमा कहां कराऊँ ? कमेटी तो '

'कमेटी में नहीं, थाने में '

पलक मारते गिरह-सी खुल गई। ब्रजमोहन उछलकर बोला—'ठीक है !'

और दौड़कर उसने खूंटी से कमीज-टोपी उतार ली।

'चल भई कुत्ते, हमारा-तेरा इतना ही संस्कार था !' ब्रजमोहन ने गदगद कंठ से कहा, और पट्टे में रस्सी बांधकर कुत्ते के साथ थाने की तरफ चला।

६

थाने पर।

बावले ब्रजमोहन के लिए यह अपने किस्म का पहला मौका था। एक लम्बी-चौडी चौकी पर डेस्क धरे दो मुशी महाशय बैठे हुए थे। जैसे जहाज के मगी भी मल्लाह होते हैं, वैसे ही ये मुशी भी बे-वर्दी के सिपाही थे। हुक्के की नाल ओठो पर, स्याही सनी खाकी कमीज तन पर और चारखाने का तहमद टांगो मे। एक मुशी की दाढी-मूछ शून्य थी, एक की पतली मूछें और छतनारी दाढी थी।

चौकी पर एक तरफ चार पाँच आदमी बैठे रिपोट लिखवा रहे थे। हाथ मे डण्डा थामे दो-एक खुफिया के आदमी इधर-उधर घूम रहे थे। एक बा-वर्दी दारोगा या नायब-दारोगा साहब कुर्सी पर बैठे टेलीफोन कर रहे थे।

ब्रजमोहन न सारे सीन को देखा, और कहा—'हुजूर !'

किसी को सुनने की फुसत नही हुई। सारा ध्यान जैसे रिपोट लिखने की तरफ लगा हुआ था।

ब्रजमोहन कुछ देर चुप चाप खडा रहा फिर साहस करके बोला—'हुजूर !'

इस बार सिफ रिपोट लिखाने वालो म से दो एक ने पलटकर देखा, पर किसी ने फिर भी कान न दिया।

ब्रजमोहा के हृदय म धैय की जो तलछट बची, उस सबको बटोर कर उसने कहा—'जनाबआली, जरा '

अब एक मुशी महाशय ने जैसे खूब व्यस्त और क्षुब्ध होकर कहा—'च ! च ! क्या है भई ?'

जनाब यह कुत्ता '

दूसरे मुशी ने बीच मे ही टोक दिया—'देखते नही, रिपोट लिखी जा रही है, पहले इसे खतम होने दो। क्या कह, लोगो की अकल पर पत्थर पड जाते हैं। हा, साहब, मुशी जी, इस पर सीसराम ने रहमत को ईंट से जदकोब किया आगे ?'

मुशीजी बोले—'इट से नही, इटो से !'

रिपोट जब लिखी जा चुकी, पढी जा चुकी, दस्तखत की जा चुकी, तो मुंशी लोग हुक्का पीने लगे।

व्रजमोहन ने डरते कहा—'जनाब को कुछ तक्लीफ '

मुंशी ने दाढी मे तर्जनी उलझाकर कहा—'क्या, क्या है !'

'जी, यह कुत्ता है।'

बे-मूछें मुंशी ने तमककर कहा—'अरे भाई, कुत्ते के लिए नही पूछा गया। मुंशीजी फर्माते है, किस लिए आना हुआ ?'

'जी, वही तो कहता हूँ।' व्रजमोहन ने कहा—'आप लोग तो मुह से बात ही नही निकलने देते।

खुफिया का एक दूत भी पास आ बैठा था। मुस्कराकर बोला—'बाबू साहब, यह तो थाना है, माफ कीजिएगा, यहाँ तो इसी तरह का बर्ताव होता है।'

व्रजमोहन ने साहस पाकर कहा— जी बर्ताव का कुछ मलाल नही मेरी अर्ज यह है कि जो कुछ मैं कहने आया हूँ, कम-से कम उसे तो धीरज के साथ सुन लिया जाय !'

वह बोला—'मालूम होता है, आप पहले-पहल थाने मे तशरीफ लाय है। माफ कीजिएगा, आपकी बातो से ऐसा ही जाहिर होता है।'

जी हा, आया तो पहिले ही हूँ।'

उसने दात निकालकर कहा—'जी, मैंने तो पहले ही अर्ज किया था। माफ

दढियल मुंशी ने कहा— अच्छा, खैर आप अपना मतलब कहिए। तो यह कुत्ता '

जी मैं सुबह जन्तर मन्तर की तरफ सैर करने गया था, आती दफे रास्ते मे यह मेरे साथ हो लिया।'

'फिर ?'

मैंने यह मुनासिब समझा कि आपको इत्तिला देकर मैं इसे थाने मे सौंप दू।

थाने मे ?'

'जी हाँ, इसके गले मे म्युनिसिपैलिटी का नम्बर मौजूद है, पर कमेटी

का दफ्तर आज बन्द है, इसलिए आपको तकलीफ देने पर मजबूर हुआ।'

'आपका इस्म शरीफ ?'

'ब्रजमोहन।'

'वल्दियत ?'

ब्रजमोहन ने झिझककर कहा—'इसकी क्या जरूरत है ?'

'जरूरत है कहा के रहने वाले है ?'

'अब तो यही रहता हूँ।'

वतन कहा है ?'

ब्रजमोहन घबराकर बोला—'यह तो बताना नही चाहता।

'वाह साहब ! आप मजाक करने तो नही आए ?' मुन्शी का मुह बन गया। वे मूछ का भाव भी साथ ही साथ बिगड गया। जैसे किसी बेतार के तार का सम्बन्ध हो।'

खुफिया के दूत की आखें चमक उठी। उसने गौर से ब्रजमोहन को ताका।

ब्रजमोहन बोला— साहब इसम मजाक की क्या बात है, मै किसी मुकद्दमे म गवाह तो हूँ नही, जो मुझसे वे सब बातें पूछी जायें।'

मुन्शीजी बोले—'अजी जनाब, बगैर पते और वल्दियत के तो हम लोग बात भी नही करते, यह तो कुत्ते की बात है ।'

कहते कहते उन्होने कुत्ते की तरफ देखा।

व मूछे मुन्शी ने बरबराकर कहा—'चले आते है, कही कही से, अक्ल का नामा-निशान नही।'

खुफिया के दूत ने चमकते नेत्र स्थिर करके कहा—'जी, वल्दियत-वगैरा तो, माफ कीजिएगा, आपको बतानी ही होगी। न-जाने कल को क्या जरूरत पड जाय !'

ब्रजमोहन बोला—'वाह ! अच्छी रही, मैंने तो इनाम का काम किया है और आप मुझे इस तरह तङ्ग करने लगे !'

'तङ्ग ! तङ्ग !' दढियल मुन्शीजी सहसा क्रुद्ध होकर बोले— तङ्ग क्या किया जी तुम्हे ? लडने आए हो ?

दूसरे मुंशी बोले—'वाहजी वाह ! ऐसे ही लोग तो पुलिस के महकमे को बदनाम करते हैं बताओ, क्या तग हमने इसे किया है ?'

दारोगाजी टर्नीफोन रखकर हँसते हुए कमरे से बाहर हो गए। रिपोर्ट लिखने वाले आँखों में मलामत भरकर ब्रजमोहन की तरफ देखने लगे। सुफिया का भूत घूरता हुआ बोला—'बाबू साहब, आपको ऐसी कच्ची बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए। यह पुलिस का मामला है। यहाँ हरएक बात की खूब जाँच-पड़ताल की जाती है। माफ कीजिएगा, यहाँ तो सग बाप का एतबार करना भी गुनाह है।'

ब्रजमोहन कुछ हत-बुद्धि होकर बोला—'तो इसमें ऐतबार की क्या बात है ? मैं कोई चोर-उचक्का थोड़े ही हूँ ?'

'यह कौन जानता है ? आपके माथे पर लिखा हुआ है कि आप चोर उचक्के नहीं हैं ?' दढ़ियल मुंशीजी ने रौब से कहा।

लेकिन इस वक्त तो कोई चोरी वगैरा का सवाल नहीं, मैं तो एक कुत्ता आपको सौंपने आया हूँ, इससे तो मेरे साहस का एतबार आपको हो जाना चाहिए।

जी हाँ हमने जमाना देखा है ऐसे दजनो केस इन आँखों के आगे से गुजरे हैं।'

छोटे मुंशी ने एक बार बड़े मुंशी को देखा और दूसरी बार ब्रजमोहन को। पहली बार नजर में गौरव और प्रशंसा का भाव था, दूसरी बार व्यंग्य और क्षुद्रता का।

ब्रजमोहन ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा— तो इसमें कौन से केस की सम्भावना आपको नजर पड़ गई ?'

'बताऊँ ?'

'हाँ।'

क्या यह मुमकिन नहीं हो सकता कि आपने कहीं से यह कुत्ता उड़ा लिया हो '

'लेकिन—'

ठहरिए यह कुत्ता कहीं से उड़ा लिया हो। पीछे गले में पट्टा देखकर आप घबरा गए हों और बचाव के लिए यहाँ चले आए हों।'

'क्या क्यास है !' व्रजमाहन झल्लाकर बोला—'अजी जनाब, आदमी की शक्ल से अच्छे-बुरे की तमीज हो जाती है।'

'जी माफ कीजिएगा, खुफिया के दूत न कहा—'यह बात गलत है, शकल देखकर अन्दाजा लगाना मुश्किल है।'

छोटा मुशी बरबरा उठा।]

बडे मुशी के मुह पर सन्तोष की रेख नजर पडी। बोले—'मैं यह नही कहता कि आपन ऐसा किया ही है। मेरा मतलब यह है कि एसा हो सकता है। अक्सर ऐसा भी हो जाता है कि काई आदमी किसी का खून कर आता है और फौरन थान म आकर किसी बहान से अपनी हाजिरी लिखा देता है। समझे आप ? क्याम ही तो है।'

व्रजमाहन इस तर्क के जवाब मे कुछ न बोल सका। मुशी ने विजय-गर्व से खुश होकर कश खीचा और फिर कलम उठाकर बाले—'हाँ, ता क्या नाम बताया, व्रजमोहन ?'

छोटे मुशी न भी उसी दम कलम उठा ली।

नाम व्रजमाहन, वल्दियत ?' मुशी ने दूसरा प्रश्न किया।

'जी, यह मैं नही बता सकता।'

मुशीजी न कलम फेंक दी और कहा—'तो फिर बेकार है !'

मुशी की कलम भी अलग जा पडी।

व्रजमाहन ने तङ्ग आकर कहा— तो इस कुत्ते को आप न लेंगे ?'

'कुत्ते को ? कुत्ते को ता हम ले ही नही सकते !'

'फिर ?'

अगर आप ठीक ठीक जवाब देते तो रिपोट लिख ली जाती, कुत्ता लेकर हम क्या करते ? जवाब दें ता रिपोट अब भी '

'तो वल्दियत और वतन का पता तो मैं नही बता सकता, नकली कहिए, तो बता दू।

मुशीजी हँसकर बोले—'नया जुर्म सिर पर लेना चाहते हो !'

व्रजमोहन बोला—'ता फिर मैं क्या करूँ ?'

छोटे मुशी ने कहा—'इमली के पत्ते पर दण्ड पेलो।

व्रजमोहन ने नाराज होकर कहा— तो मुशीजी, मैं जाऊँ ?'

'जा सकत है।'

'इस कुत्ते को ?'

'साथ ही ल जाइए।'

'ता इस सडक पर छोड दू ?'

'हमारी तरफ स कुएँ म फेंक दीजिए।'

'बहुत अच्छा, सलाम।'

कुत्ते की रस्सी पकडकर ब्रजमोहन चल दिया।

बाहर आकर ब्रजमोहन ने कहा—'धत्तरी पुनिम की। चल भई कुत्ते, आज का दिन तेरे नाम पर चल, रायसीने म तेर मालिक की खोज करूँगा।'

कुत्ता क्या समझता और क्या बोलता ?

७

तेज दुपहरी थी लोग तपे जा रहे थे और बावला ब्रजमोहन कुत्ते की रस्सी हाथ म थाम रायसीने की तरफ चला जा रहा था।

यह प्याऊ आई, यह पुल आया, यह कनाट पलेस, वह हनुमानजी का मन्दिर रहा यह सामने जन्तर-मन्तर है यह हनुमान रोड—जिस पर पजाबी ठेकेदारो की पुण्य की कमाई की प्रतिमूर्ति आलीशान इमारतें खडी थी।

कुत्ते की रस्सी पकड ब्रजमोहन इसी सडक पर चल दिया। जैसे उसकी तपस्या पर भगवान प्रसन्न हो गए। थोडी दूर आग बढते ही उसने देखा एक औरत बरामद म खडी गौर स कुत्ते की तरफ दख रही है। ब्रजमोहन क्षण भर को ठिठका कि औरत जोर से बोल उठी—'अरे भाई यह हमारा जक'

ब्रजमोहन कुत्ते को लकर उधर ही चला।

शक्ल-सूरत से औरत दासी जान पडती थी। दौडती हुई आई और कम्पाउण्ड का सलाखदार दरवाजा खोलकर बेतहाशा कुत्ते पर आ पडी। गोद म लेकर उस चुमकारते हुए बोली—'अरे र, जक! तू कहाँ चला गया था ? अरे मैं तो तडप गई। अरे बेटा, कहाँ रास्ता भूल गया था ?'

कहकर वह ब्रजमोहन से बिना एक शब्द कहे, जैक को गाद म चिपटा-कर भीतर भाग गई। दरवाजे के बराबर एक तख्ती लटकी हुई थी, जिस पर अग्रेजी म लिखा था, डॉक्टर जी० एस० भटनागर। ब्रजमाहन कुछ देर चुपचाप धूप म खडा इस तख्ती को देखता रहा, फिर लम्बी साँस लेकर वापस लौटा।

पर अभी कुछ ही कदम गया था कि पीछे से आवाज आई—'बाबूजी, अजी ओ बाबूजी !'

ब्रजमोहन ने पलटकर देखा, वही दासी किवाड पकडे खडी है और जोर-जोर से आवाज दे रही है।

उसके पास पहुँचा, तो बोली—'आप ता चल ही दिय !

ब्रजमोहन ने धीरे से कहा—'और क्या करता ?'

'वाह ! आपको तो सरकार बुला रहे है।'

'कौन सरकार ?'

'बडे बाबूजी।'

ब्रजमोहन के लिए 'सरकार' और 'बडे बाबूजी' दोना ही अपरिचित थे। तो भी दा बातें वह समझ गया। एक यह कि उन्होने बुलाया है, जिनका कुत्ता है। दूसरी यह कि उनका लडका इतना वयस्क है जो 'बाबूजी' या 'छोटे बाबूजी' कहलाने का अधिकारी हा गया है।

बाले—'मैं क्या करूँगा चलकर ? यद्यपि चलना चाहते थे। और किसी लिए न सही, इसीलिए कि प्यास बडे जोर की लगी थी।

दासी बोली—'वाह बाबू साहब, सरकार न बुलाया है, तो क्या नही चलते आप ?'

इतने म सरकार खुद ही बरामदे म आ गए। ब्रजमाहन ने उन्ह देखा। उन्होने झट दोनो हाथ जाडकर ब्रजमाहन को प्रणाम किया और कहा—'थक्यू वेरी मच, बाबू साहब, आइये—भीतर पधारिय।'

अब ब्रजमोहन रुक न सके और शर्माते हुए भीतर घुसे।

सरकार का शरीर सावला, माटा और कुछ बेढगा था। ऊपर के तीन दात नकली थे। पतली धाती तन पर थी, जो तोद के कारण ऊँची हो गई थी। धोती का आधा हिस्सा उन्हाने कमर पर माड रक्खा था। गले मे एक

सोने का लाकेट पड़ा हुआ था। चेहरा स्नेहपूर्ण था और आंखों में भय, उद्वेग और चिन्ता का भाव था। सिर के आधे बाल उड़ गए थे। जो बच गए थे, वे बिल्कुल सफेद थे।

ब्रजमोहन से हाथ मिलाकर बोले—'आपकी बड़ी मेहरबानी हुई बाबू साहब, मैं इस कुत्ते के लिए बड़ा चिन्तित था। आइए, भीतर आइये।

बड़े बाबू या सरकार के साथ ब्रजमोहन भीतर घुसा।

८

मकान खूब लम्बा चौड़ा था। बड़े-बड़े कमरे थे। फर्नीचर रईसाना था। कार्पेट कीमती था। इधर-उधर कमरे थे और बीच में बरामदा। ब्रजमोहन को साथ लिए हुए बड़े बाबू इसी बरामदे में से गुजरने लगे।

दो के बाद तीसरा कमरा आया। सहसा ब्रजमोहन के कान में सिसकी ले लेकर किसी के रोने की आवाज पड़ी। ब्रजमोहन चौंक पड़ा। दाएँ कमरे का दरवाजा बन्द था। किवाड़ों के ऊपरी हिस्से में शीशे लगे हुए थे। ब्रजमोहन ने देखा, भीतर पलङ्ग पर कोई स्त्री औंधी पड़ी हिचक हिचककर रो रही है। सिर उसका खुला हुआ था, हाथ इधर-उधर पड़े थे और पिंडलियां उघरी हुई थीं।

रोने की आवाज बड़े बाबू के कान में भी पड़ी। उन्होंने ब्रजमोहन को कमरे में झांकते देखा तो झट उसका हाथ पकड़ लिया और बोले—'कहिए, यह जगह आपको पसन्द आती है?'

ब्रजमोहन ने चौंककर कहा—'जी हां, आब हवा के लिहाज से तो अच्छी ही है।'

'मैं तो समझता हूँ, बहुत अच्छी है। जरा गर्मियों की तकलीफ देख लीजिए, वरना जाड़े-बरसात में तो आराम ही-आराम है।

ब्रजमोहन ने कुछ जवाब न दिया। उसका तो सारा ध्यान उस रोती हुई औरत की तरफ लग गया था जिसके गोरे गोरे पर और लच्छेदार बाल तथा गोल-गोल हाथ थे।

बड़े बाबू फिर बोले—बात यह है कि बरसात में तो सब तरफ हरियाली दिखाई देती है, घूमने फिरने में बड़ा आनन्द आता है। जाड़ों में

'गवनमेण्ट आफ इण्डिया' के दफ्तर आ जाते है, खूब रौनक रहती है।'

व्रजमोहन ने तब भी कुछ जवाब न दिया, या कहे, तब भी कुछ न सुना। वह गोरी पिंडलियो वाली, गोल हाथो वाली, लच्छेदार बालो वाली क्यो रोती थी? वह कौन थी?

बडे बाबू ने एक कमरे मे घुसते हुए कहा— समझे आप?'

व्रजमोहन तो खाक भी न समझा था, क्या जवाब देता? हा, इस सवाल ने उसका ध्यान अवश्य भग कर दिया। चिहुँककर बोला—'जी क्या कहा?'

बडे बाबू एक ऐसे कमरे मे आकर बठे, जिसमे गद्देदार कुर्सिया थी, जिसके दरवाजो पर खस के पर्दे लगे हुए थे और जिसकी छत मे बिजली का पखा लटक रहा था।

जाते ही बडे बाबू ने मेज पर रक्खी हुई घण्टी बजाई। उसी दम बगल का दरवाजा खुला और साथ ही कमरा प्रकाश से भर उठा। व्रजमोहन ने उधर देखा, सामने ही एक खुला सहन था। बीचो बीच छोटा-सा चँदोवा तना हुआ था, उसके नीचे मढा बना हुआ था और दो एक नौकर दासी चुपचाप इधर-उधर घूम रहे थे।

व्रजमोहन चौंक पडा। क्या किसी की शादी है?

उस लच्छेदार बालो वाली औरत के विषय मे व्रजमोहन ने अभी-अभी एक कल्पना स्थिर की थी। शायद बडे बाबू की स्त्री हो। शायद दुहेज या तिहेज हो। शायद किसी मानसिक क्लेश से बिलख रही हो।

पर इस मढे को देखकर हठात उसकी कल्पना बदल गई। शायद वह बडे बाबू की लडकी हो। शायद उसी का ब्याह होने वाला हो। शायद रो पर रो क्यो रही है? घर मे ब्याह की-सी तैयारी क्यो नही है? कोई स्त्री-पुरुष मेहमान क्या नही है? दावत-वगैरा का इतजाम

बडे बाबू ने नौकर को हुक्म दिया—'पखा खोल दो।'

पखा खुल गया और नौकर जाने लगा, तो व्रजमोहन बोला—तकलीफ न हो तो थोडा पानी मँगाइये।

ओहो! भूल गया, माफ करें।' बडे बाबू ने एकदम गिडगिडाकर मारवाडियो का-सा मुह बना लिया और नौकर की तरफ फिरकर कहा—

लाओ भई, दो गलासो म शवत ले आओ।'

'जी बस, पानी मँगा लीजिए शवत नही।'

बडे बाबू ने स्नेहपूण स्वर म कहा—'वाह! फीका पानी क्या पीजिएगा।

नौकर गया तो वह बोले—'माफ करना, याद न रही, आज कुछ व्यस्त हूँ।'

ब्रजमोहन ने मढे की तरफ ताक्कर कहा—'मालूम होता है ,

'जी हा बडे बाबू टोक्कर बोले—'आज लडकी की शादी है। मै इस मामले म बहुत ही सक्षेप स काम ले रहा हूँ, तो भी काफी चिन्ता सिर पर आ पडी है। क्या बताऊँ साहब ,

ब्रजमोहन बोला— हाँ, सक्षेप तो आपन काफी बरता है अगर कोई यह मढा न देखे तो कह ही नही सकता कि इस मकान म शादी होने वाली है। और कब बताई आपन ? आज ?

'जी हाँ, आज ही शाम को।

लीजिए यह और भी अचरज की बात है। आज शाम को शादी होगी और घर म चिडिया बोलन तक की आवाज नही आती।

बडे बाबू कुछ सिटपिटा से गए। आखो म भय का भाव दिखाई दिया। बोले— जी हाँ ऐसी ही शादी करना चाहता हूँ। हा जब आपको कहाँ मिला ?

'जी सुबह मैं इधर घूमने आया था तो साथ हो लिया। कमटी का दफ्तर आज बन्द था इसलिए थाने म दाखिल करने गया। जब उन लोगो ने इन्कार कर दिया तो लेकर इधर चला आया।

आपन बडी महरबानी की। आप काम क्या करते हैं ?'

मैं ? रेलवे म नौकर हूँ।'

आपन बडी तकलीफ की। इस दोपहरी मे कहिए आप सिगरेट पीते हैं ?

जी नही। ब्रजमोहन न कहा— आप क्या शहर म प्रक्टिस करते हैं ?

नहा जी प्रक्टिस छोडे तो मुद्दत हुई, कलकत्ते म करता था। अब तो

शरीर आराम माँगता है। जवानी मे बेहद काम करने का यह कुफल निकला कि पूरे चालीस का हुआ नही, और बुढापे ने आ दबाया। फिर मानसिक कष्ट भी काफी हुआ। जवानी मे स्त्री का विछोड हो गया। एक लडका एक लडकी छोडकर मरी थी, इसलिए उन्ही दोनो मे मैंने लगाया। अब तो बरस दिन से यहाँ रहकर जिन्दगी के दिन काटता हूँ ? बडी-बडी लम्बी साँसें लेकर एक ही बार मे सब-कुछ कह गए।

व्रजमोहन को एक बार म बहुत-सी बातें मालूम हो गइ। कुछ देर रुककर उसने एक बात जहन मे बठाई। फिर बोला—'साहबजादे क्या करते है ?'

'कलकत्ते से पिछले साल एम० एस-सी० पास किया था। अब मेरे साथ ही रहता है। मैंने अब इरादा किया, ब्याह कर दू, तो न-जाने उसे क्या धुन समाई है कि ब्याह ही नही करता। कहता है—'एक बार रूस की सैर कर आऊँ, उसके बाद देखा जाएगा।' अब आप ही बताइए, मैं कसे उसे इजाजत द सकता हूँ ? अकेला लडका ! भला कैसे रूस चला जाने दू ? मेरे शरीर का तो सत्व जल चुका है, यह जो आप मोटाई देखते है यह तो छिलका-ही-छिलका है। उधर वह जाय रूस, और इधर मैं खतम हो जाऊँ ! बस, इसी पर मामला रुका हुआ है।'

इस अपरिचित एम० एस-सी० पास किए हुए युवक की तरफ व्रजमोहन के मन म एकाएक श्रद्धा और उत्सुकता का भाव पैदा हो गया। बोला—'तो जाने दीजिए रूस ! हज क्या है ? आप क्यो उनके उत्साह को दबाते हैं ?'

बडे बाबू ने कहा—'अरे साहब आप जानते नही, आजकल तो हर-एक नौजवान सरकार की आखो म कील की तरह गढ रहा है तिस पर मेरा बेटा तो अविवाहित है और एम० एस-सी० पास किए हुए है। वह अगर रूस जाएगा, तो सोचिए रास्ते मे या लौटने पर उसे कैसी मुसीबत का सामना करना पड सकता है। '

बडे बाबू का तक व्रजमोहन को जँचा नही तो भी वह चुप हो गया। नौकर शबत ले आया था। दोनो ने पिया।

शबत पीकर व्रजमोहन ने कहा—'तो अब आज्ञा दीजिए।'

–

बड़े बाबू बोले—'अरे ! अभी से ? अभी तो बड़ी तेज धूप है। दो मील अगर आप इस धूप में चलें, तो बीमार पड़ जायेंगे।'

ब्रजमोहन भी जाना नही चाहता था, तो भी जमुहाई लेकर बोला—'न, बस जाने ही दीजिए। नींद आ रही है, जाकर सोऊँगा।'

'नींद आ रही है ? तो चलिए, सो रहिए। यह तो आप ही का मकान है। सकोच क्यो करते हैं ? क्या बताऊँ, आपने बड़ी ही तकलीफ की। इस धूप मे आइए, मैं आपको सोने का कमरा बताऊँ।'

ब्रजमोहन फिर भी सकोच में पड़ा, तो बड़े बाबू ने प्यार-भरी झिड़की से कहा—'छि ! तुम तो भई, बड़े शर्मीले हो ! अगर दो घण्टे आराम कर लोगे, तो मेरा कुछ छीन लोगे ? लो, अब आओ, उठो !'

अब ब्रजमोहन बैठा न रह सका। शरमाता हुआ उठा।

फिर वही बरामदा और बड़े-बड़े कमरे ! वही शीशे के किवाड़ो वाला बन्द कमरा और वही रोने की आवाज ! वही सुन्दरी और वही लच्छेदार बाल, वही गोरी-गोरी पिंडलियाँ, वही गोल गोल कलाइयाँ !

अब की बार स्थिति में अन्तर था। औंधी न होकर अब की बार उसने बरामदे की तरफ करवट ले ली थी।

ब्रजमोहन ने देखा, तो अवाक् रह गया ! रंग लाल अनार के दाने की तरह था, पलकें लम्बी-लम्बी थीं, चेहरा बँजवी था, ओठ पतले और लाल थे, और माथा बिना सिकुड़न के था।

फूले गालों पर पानी ढरक रहा था, और हिचकी के साथ सारा शरीर हिल रहा था।

इस सीन को ब्रजमोहन ने भी देखा और बड़े बाबू ने भी। और, दोनों भिन्न-भिन्न कारणों से चौंक पड़े !

दोनों ने शंकित नेत्रों से दोनों को ताका। ब्रजमोहन के मुँह से निकला—'आप कौन ?'

बड़े बाबू ने बड़ी मुश्किल से जवाब दिया—'मेरी लड़की है !'

फिर क्षण भर बाद ही उन्होंने कहा—'जब के रोने की खबर से रो रही है ?'

फिर इस बहाने की अनौचित्य समझकर फौरन ही बोले—'जान

पडता है अभी इसे खबर नही मिली। रमदेई, अरी रमदेई, देख तो, प्रतिभा अभी तक रो रही है। जैक को ले आ।'

व्रजमोहन न वडे बाबू के जद चेहरे पर दृष्टि-पात न किया, और आगे वढा। मन म उसने कई वार दोहराया—'प्रतिभा! प्रतिभा! प्रतिभा!'

६

नीद किसे आती, और कसे आती? उस गद्देदार पलग पर घण्टे-भर तक व्रजमोहन इस तरह करवटे बदल रहा था, जैसे काटे विछे हो, या नीचे आग दहक रही हो। दस मिनट तक तो रोने की आवाज सुनी थी, फिर बन्द हो गई। कुत्ता मिल गया होगा, या वडे बाबू न जाकर कुछ व्यवस्था की होगी। पिछली बात ही जँचती थी।

रोना कुछ अनहोनी बात नही। विवाह के पूव हिन्दू की लडकी का रोना अस्वाभाविक भी नही, पर वडे बाबू की वेपॅदे की वाता न व्रजमोहन को सशय म डाल दिया, और अब इस सक्षिप्त विवाह अनुष्ठान पर उसने विचार किया, तो उसका मन एकबारगी शकाशील हो उठा।

जब चार बज गए, और किसी तरह नीद न आई, ता व्रजमोहन उठ खडा हुआ, और गद्देदार कुर्सीवाले कमरे की तरफ चला।

अब की वार वह लच्छेदार बालोवाली सुन्दरी कमरे मे न दिखाई दी, खाली पलग पडा हुआ था। व्रजमोहन ने खूब आख गडा-गडाकर सब कमरो मे देखा, वहीं कोई न था।

वह अभीष्ट कमरे मे पहुँचा, तो देखा, वडे बाबू हैं, और उनके पास ही एक तिलकधारी पडित महाशय कुर्सी पर विराजमान ह। छोटी मेज पर कपडे मे लिपटी हुई कोई चीज—शायद कोई पुस्तक—रखी हुई थी। पडितजी के सिर पर रेशमी साफा था गले मे दुपट्टा था, शरीर म अचकन थी हाथ मे डण्डा था, और दागा म धोती थी। मुह पर चमक थी।

व्रजमोहन को देखते ही वडे बाबू बोले—'आओ भाई आओ कहो, नीद अच्छी आई!'

व्रजमोहन ने सकुचित होकर कहा—'जी, अब आना दीजिए।'

'अरे !' बडे बाबू ने कहा—'आता कैसी ? अभी ब्याह होनेवाला है, खा-पीकर जाइयेगा।'

ब्रजमोहन ठीक बात न समझा। बोला—ब्याह ? हाँ, मगर बारात तो आई नहीं ?

बडे बाबू के नेत्रों में फिर भय के चिह्न दिखाई दिए, पर तुरन्त सँभलकर उन्होंने हँसते हुए कहा—'आपसे कहा था न, मैं यह ब्याह बिल्कुल सक्षेप में कर रहा हूँ। यह शास्त्रीजी हमारी तरफ से सब रस्म भुगता देंगे, एक पंडित उधर से आ जायेंगे।'

'और बारात ?'

'बस बारात में एक दूल्हा ही होंगे। शायद और दो-एक आदमी हों। मैंने कहा न, यह ब्याह संक्षिप्त '

ब्रजमोहन चकित होकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

अब शास्त्रीजी ने घड़ी देखकर कहा—आ जाना चाहिए था—सवा चार बज चुके।

बडे बाबू ने उदासी से कहा—'वक्त हुआ है—आजायेंगे।'

दो मिनट ठहरकर शास्त्रीजी ने हँसते हुए कहा—कहिए छोटे बाबू राजी हो गए ?'

बडे बाबू ने कुछ जवाब न देकर सिर झुका लिया, और ठंडी साँस ली।

शास्त्रीजी ने माना बडे बाबू का दुःख पोंछने के लिए बात टाली—'गए कहाँ हैं ?

'कौन ? भूषण ? इस लडके ने मुझे बडा परेशान किया शास्त्रीजी दिन भर लाइब्रेरी में बैठा रहता है सुबह से गायब। जाने क्या धुन समाई है—रूस जाने की '

सहसा बरामदे में किसी का पद शब्द सुनाई पड़ा। क्षण-भर बाद ही एक आदमी सामने आ खड़ा हुआ। शक्ल-सूरत से नौकर जान पडता था।

बडे बाबू ने कहा—'मालूम होता है आ गए !'

शास्त्रीजी ने चिन्तित भाव से कहा—शायद ! तो भूषण सुबह से

नौकर ने सलाम करके कहा—'आपको सेठ साहब बुलाते हैं।'

'मुझे ? कहाँ है ?' बडे बाबू ने अचरज से पूछा।

'घर है।'

घर हैं, आए नही ?'

'जी नही, आपको बुलाते हैं, बहुत जरूरी काम है। मुझसे साथ लाने को कहा।'

'मुझे बलाया है ? आए नही ?' बडे बाबू का चेहरा अजीब तरह का बन गया। भय, चिन्ता, उद्वेग का एक साथ आक्रमण हुआ। कुर्सी छोडकर खडे हो गए।

शास्त्रीजी के मुह पर हँसी की रेख दिखाई दी। बोले—'हा आइए, देखें क्या कहत हैं, अभी तो मुहूत मे तीन घण्टे की देर है।'

'अच्छा।' कहकर बडे बाबू कपडे पहनने दौडे।

ब्रजमोहन अजब चक्कर मे पडा।

शास्त्रीजी मुह फेरकर मुस्करा रहे थे।

१०

बडे बाबू चले गए, तो शास्त्रीजी ने व्यस्त-भाव से कई बार ब्रजमोहन की तरफ देखा। फिर बोले—'आपके घर पर तो फिक्र न होगी ?'

मेरे घर है ही कौन ?—न बीवी, न बच्चे !'

'माँ-बाप ?'

सब देश रहते हैं।'

शास्त्रीजी जैसे बडे धम-सकट मे पड गए। फिर साहस करके बोले—'आपसे एक निवेदन है।'

'कहिए।'

'अब कोई विचित्र बात देखें, तो दखलअन्दाज न हो।'

'वाह ! कोई दुघटना हुई, तो ?'

'नही, बुरी नहीं है।'

'आखिर क्या है ?'

शास्त्रीजी ने कुछ देर इधर-उधर किया, फिर बोले—'मैं कहता हूँ, आपकी उस काम से हमदर्दी होगी।'

'आखिर है क्या ?' ब्रजमोहन ने चकित होकर पूछा।

शास्त्रीजी अँगरजी, मे बोले—'But mind, it is absolutely confidential'[1]

इस अचकन तिलक-धारी के मुह मे अँगरेजी सुनकर पहिले तो व्रज मोहन अचरज मे पडे, फिर बोले—'Doesn't matter'[2]

शास्त्रीजी धीरे बोले—'बडे बाबूजी अपनी लडकी का ब्याह एक बूढे स कर रहे है, उनके लडके भूपण इसके खिलाफ है। उन्होंने एक षडयन्त्र रचकर बडे बाबू को ऐन वक्त पर हटा दिया है, और उनकी अदम मौजूदगी मे लडकी का ब्याह एक योग्य नवयुवक से कर दिया जाएगा।'

व्रजमोहन उछल पडा। उस लच्छेदार बालोवाली सुन्दरी के रुदन का अर्थ समझ मे आ गया। उत्साहित होकर बोला—'खूब!'

'तो आप बाधा तो न देगे?'

'बाधा?—साहब, मदद दूगा।'

शास्त्रीजी सन्तुष्ट होकर बोले—'धन्यवाद!'

व्रजमोहन ने पूछा—'पर दूल्हा कहा है?'

शास्त्रीजी न जवाब न दिया था कि कमरे के द्वार पर एक मुछकटा खूबसूरत जनाब आ खडा हुआ। शास्त्रीजी ने देखते ही कहा—'क्यो भूपण रामप्रताप कहा है।'

भूपण ने व्यस्त भाव से व्रजमोहन की तरफ देखा, और कहा—'आप जरा बाहर आइए।

शास्त्रीजी उठकर गए। दम भर बाद ही दोनो वापस आए। शायद शास्त्रीजी न व्रजमोहन का परिचय भूपण को दे दिया। आते ही भूपण ने व्रजमोहन से हाथ मिलाया, और कहा—'माफ कीजिएगा, मै आपको पहचानता न था।

'कोई बात नही।' व्रजमोहन ने दिलचस्पी लेकर कहा—'कहिए, दूल्हा कहा है?

भूपण न चिन्तित और व्यग्र भाव से कहा— अभी आदमी भेजा है।'

---

१ लेकिन देखिए बात आप ही तक रहे।'

२ 'कोई बात नही।'

शास्त्रीजी ने पूछा—'तो साथ ही क्यो न ले आए ?'

भूषण बोला—'मिला नही।'

'जल्दी बुलाइए, वक्त बीता जा रहा है।'

'आदमी भेजा तो है।'

'एक आदमी और भेज दीजिए, सेठजी न आ पहुँचे।'

'कम-से कम घण्टे-भर तो आ नही सकते। मैंने ड्राइवर को सिखा दिया है।'

एक आदमी और भेज दिया गया।

दस मिनट बाद ही पहला आदमी अकेला लौटा। तीनो का चेहरा फक हो गया।

आदमी ने एक लिफाफा लाकर भूषण को दिया। झट लिफाफा फाडा गया, और झट पत्र पढा गया।

पत्र छोटा ही था। पढकर भूषण ने उसे फर्श पर फेंक दिया, और दाँत पीसकर कहा—'पाजी! सुअर! वक्त पर धोखा!'

कहकर वह क्रोध म भरकर उठ खडा हुआ, और कमरे मे इधर से उधर टहलने लगा।

शास्त्रीजी ने पत्र उठा लिया, और पढकर मेज पर रख दिया। व्रजमोहन न देखा, उनका मुह सूख गया।

व्रजमोहन से क्षमा मागकर उन्होने भूषण को साथ लिया, और दोनो दालान मे चले गए।

व्रजमोहन तीन मिनट स्तब्ध बैठा रहा, एक मिनट इधर-उधर देखता रहा, और फिर झट मेज से खत उठा लिया।

जल्दी जल्दी मे कुछ लाइनें लिखी थी—

'भूषण, मुझे माफ करना। पिताजी इस शादी के पक्ष मे नही हैं। मैं उनकी मर्जी के खिलाफ नही जा सकता। मुझे अपनी इस दुबलता के लिए बडा खेद है।—रामप्रताप'

व्रजमोहन ने खत को मेज पर फेंक दिया, और परिस्थिति की विचित्रता और विषमता पर एकबारगी चिंतित हो उठा।

दस मिनट बाद भूषण धीरे धीरे आया। मुह पर घोर चिन्ता का भाव

था, आँखें भविष्य के भय से भीतर धँस गई थी, पर लडखडा रहे थे। आकर एक कुर्सी पर बैठा।

ब्रजमोहन ने पूछा—'कहिए, क्या निश्चय किया ?

भूषण ने आशा-पूर्ण नेत्रों से ब्रजमोहन को ताकते हुए कहा—'कुछ कहा नही जाता, अजीब परिस्थिति है।'

ब्रजमोहन भी चिन्ता मे डूब गया। बोला कुछ नही। मिनट-भर बाद भूषण बोला—'आपकी शिक्षा कहाँ तक है ?'

ब्रजमोहन बोला—'मैट्रिक तक पढा हूँ।'

भूषण क्षण-भर चुप रहा, फिर बोला—'रेलवे मे नौकर हैं आप ?'

'जी हाँ।'

फिर कुछ देर रुककर पूछा गया—'क्या वेतन मिलता है ?'

चालीस रुपये।'

'और लोग कहा रहते हैं ? आपके पेरेंट्स कहाँ है ?'

'माँ है नही, पिता हैं।' अब ब्रजमोहन ने भूषण का अभिप्राय समझ कर कहा—'महाशय मैंने विवाह न करने की कसम खाई है।'

भूषण चौंक पडा। अब जैसे ब्रजमोहन उसके लिए स्वर्ग बन गया। घबराकर बोला—'क्या कहा ?'

'जी क्षमा करें, आपका मतलब मैं समझ गया। पर मैंने तो आजन्म अविवाहित रहने की कसम खाई है।' ब्रजमोहन ने जमे दरिया मे डूबते हुए कहा।

भूषण का दिल जोर से धडक उठा। कातर स्वर मे बोला—'भाई, ऐसी बात

इसी समय शास्त्रीजी भीतर आए। शायद बाहर से सब कुछ सुन रहे थे। आते ही बोले—'देखिए आपसे मेरा परिचय नही है, पर आप मेरे लडके के बराबर हैं इसी से कहता हूँ। इस वक्त एक निर्दोष बालिका की रक्षा करने मे आपको पूरी मदद देनी चाहिए। मुझे ही देखिए, बड़े बाबू का वर्षों का परिचित हूँ, तो भी, औचित्य पालन के लिए, उनके अहित पर उतारू हो गया हूँ। आपको एक सच्चे नौजवान की तरह हम लोगो की मदद करनी चाहिए।'

व्रजमोहन का इरादा खोखला हो चुका था। अव इस वात न और उस लच्छेदार वालो वाली की याद ने वह आँधी चलाई कि सव-कुछ जड-समेत गायव हो गया।

शास्त्रीजी ने उछलकर कहा—'भूपण, प्रतिभा को लाओ, जल्दी करो। और देखो, दरवाजे सव भीतर से वन्द कर लो। जाओ, पहले दरवाजे पर'

भूपण भागा भागा गया और भागा भागा आया। उसके मुह का भाव देखकर हँसी आती थी।

पाच मिनट वाद व्रजमोहन और प्रतिभा अगल-वगल वैठे थे। भूपण कन्यादान का अभिनय कर रहा था और नौकर-चाकर अचरज से आँखें फाडकर अलग खडे तमाशा देख रहे थे।

मन का पाप

१

तीस बरस की उम्र म बाबू अमरनाथ विधुर हो गए।

बारह बरस स्त्री का साथ रहा, पर बारह दिन भी दिल मिलकर न रहा। अलबत्ता इस बीच म पाँच बच्चे हो चुके थे, पर इस दिल मिलने की निशानी नही समझनी चाहिए। जब पत्नी मरी, तो अमरनाथ ने ठडी साँस ली और घर आकर बारह बरस म बारह हजार बार दोहराई हुई प्रतिज्ञा की पुनरुक्ति की। अब आजीवन विवाह न करने का पक्का इरादा ठहान कर लिया।

पाँच बच्चे पैदा हुए थे जिनम से दो जीवित थे, एक छ बरस का एक दो बरस का। मातम-पुर्सी और क्रिया-कम म ही लोगो न टीका-टिप्पणी शुरू कर दी थी। अमरनाथ को स्तब्ध और विपण्ण जानकर एक न दूसरे से कहा— भाई साहब मरद की इतनी पूछ है पर सच पूछो तो औरत बिना मरद दो कौडी के मतलब का नही।'

दूसरे ने कहा— इसम क्या शक है साहब, पर किया क्या जाय— मौत क सामने किसी की नही चलती।

तीसर बोले— हा जी, आदमी क बस का तो यही है दु ख-तकलीफ म दवा दारू करें मौत के आगे किसकी पार बसाई है। अमरनाथ ने ही इलाज मुआलजे म क्या कमी छोडी थी, पर क्या बताएँ यार इन्सान की जिन्दगी भी क्या ।

एक पत्थर दिल महाशय अकडकर बोल उठे— तुम लोग भी यार, निरे घाचू हो। इस वक्त गरीब के दिल को तसल्ली देनी चाहिए, कि

लेकर मुहरमी बातें बकने लगे। और भाई, मरद तो शेर है—राजा है, उसके लिए औरत का क्या गम ? एक आज मर गई, तो कल दूसरी तैयार है। कोई औरतो का घाटा है ?'

इसके बाद इन महोदय ने अपने कई रिश्तेदारो की लडकियो के नाम ले डाले, और प्रकट किया, मानो वे सब रिश्तेदार मुद्दत से लडकियाँ हाथो पर धरे तैयार खडे थे कि कब अमरनाथ विधुर हो, और कब लडकिया उन्हे भेंट करें।

२

अमरनाथ ने सबसे माफी मागी। नही कहा जा सकता, बारह बरस के उत्पात मे कसूर किसका था, पर उन दृश्यो की पुनरावृत्ति की कल्पना से ही अमरनाथ के रोगटे खडे हो जाते थे। ज्यो-ज्यो दिन बीत, एकान्त के सुख का अनुभव हुआ, पिछले जीवन से इस जीवन की तुलना की, त्यो-त्यो वह प्रतिज्ञा फौलाद की तरह कठिन होती गई।

उनकी एक व्यस्का साली थी। ससुर आए, साले आए, सास भी आइ, मिन्नतें की, पर अमरनाथ ने कबूल न किया, अलबत्ता योग्य वर तलाश कर देने का वचन दिया। और योग्य वर तलाश कर भी दिया। साली का ब्याह भी हो गया।

स्त्री की मृत्यु के कुछ ही दिन पश्चात दोनो बच्चो को उन्होने ससुराल भेज दिया था। अकेले रहते, और मस्त रहते। खूब खाते पीते, दण्ड बैठक लगाते पहलवानी करते, ईश्वर भजन करत, और औरत के नाम से सदा कोसो दूर भागते।

उनका जीवन निर्द्वन्द्व हो चला। शरीर बन गया। चेहरा निखर आया। आखो मे नूर झलकने लगा। जवानी मानो फिर से अवतरित हुई।

लोगो ने यह अवस्था देखकर मुस्करा दिया। बहुतो के मन मे बात उठी, और दो चार के छन भी आई। अखाडे के बूढे उस्ताद करीमखा ने कहा—'बेटे, घर और बच्चो की तरफ भी तो देखो।'

लड त करके चुके थे कि करीमखा की यह बात सुनी। क्षण-भर रुके

मन का पाप

१

तीस बरस की उम्र म बाबू अमरनाथ विधुर हो गए।

बारह बरस स्त्री का साथ रहा, पर बारह दिन भी दिल मिलकर न रहा। अलबत्ता इस बीच म पाँच बच्चे हो चुके थे, पर इसे दिल मिलने की निशानी नही समझनी चाहिए। जब पत्नी मरी, तो अमरनाथ ने ठडी साँस ली और घर आकर बारह बरस म बारह हजार बार दोहराई हुई प्रतिज्ञा की पुनरुक्ति की। अब आजीवन विवाह न करने का पक्का इरादा ठान कर लिया।

पाँच बच्चे पैदा हुए थे, जिनम स दो जीवित थे एक छ बरस का एक दो बरस का। मातम-पुर्सी और क्रिया कम म ही लोगो न टीका-टिप्पणी शुरू कर दी थी। अमरनाथ को स्तब्ध और विषण्ण जानकर एक ने दूसरे से कहा— भाई साहब मरद की इतनी पूछ है, पर सच पूछो तो औरत बिना मरद दो कौडी के मतलब का नही।

दूसरे ने कहा— इसम क्या शक है साहब, पर किया क्या जाय— मौत के सामने किसी की नहा चलती।

तीसरे बोले—'हाँ जी, आदमी के बस का ता नही है, दुख-तकलीफ म दवा दारू करें, मौत ने आगे किसकी पार बसाई है। अमरनाथ ने ही इलाज मुआलजे म क्या कमी छोडी थी, पर क्या बताएँ यार, इसान की जिन्दगी भी क्या ।

एक पत्थर दिल महाशय अकडकर बोल उठे— तुम लोग भी यार निरे घोंघू हो। इस वक्त गरीब के दिल को तसल्ली देनी चाहिए, कि

लेकर मुहर्रमी बातें बकने लगे। और भाई, मरद तो शेर है—राजा है, उसके लिए औरत का क्या गम ? एक आज मर गई, तो कल दूसरी तैयार है। कोई औरतो का घाटा है ?'

इसके बाद इन महोदय ने अपने कई रिश्तेदारो की लडकियो के नाम ले डाले, और प्रकट किया, मानो वे सब रिश्तेदार मुद्दत से लडकियाँ हाथो पर धरे तैयार खडे थे कि कब अमरनाथ विधुर हो, और कब लडकियाँ उन्हें भेंट करें।

२

अमरनाथ ने सबसे माफी माँगी। नही कहा जा सकता, बारह बरस के उत्पात मे कसूर किसका था, पर उन दश्यो की पुनरावृत्ति की कल्पना से ही अमरनाथ के रोगटे खडे हो जाते थे। ज्यो-ज्यो दिन बीते, एकान्त के सुख का अनुभव हुआ, पिछले जीवन से इस जीवन की तुलना की, त्यो-त्यो वह प्रतिज्ञा फौलाद की तरह कठिन होती गई।

उनकी एक व्यस्का साली थी। ससुर आए, साले आए, सास भी आई, मिन्नतें की, पर अमरनाथ ने कबूल न किया, अलबत्ता योग्य वर तलाश कर देने का वचन दिया। और योग्य वर तलाश कर भी दिया। साली का ब्याह भी हो गया।

स्त्री की मृत्यु के कुछ ही दिन पश्चात दोनो बच्चो को उन्होने ससुराल भेज दिया था। अकेले रहते, और मस्त रहते। खूब खाते पीते, दण्ड-बैठक लगाते पहलवानी करते, ईश्वर भजन करते, और औरत के नाम से सदा कोसो दूर भागते।

उनका जीवन निर्द्वन्द्व हो चला। शरीर बन गया। चेहरा निखर आया। आखो मे नूर झलकने लगा। जवानी मानो फिर से अवतरित हुई।

लोगो ने यह अवस्था देखकर मुस्करा दिया। बहुतो के मन मे बात उठी और दो चार के छा भी आई। अखाडे के बूढे उस्ताद करीमखा ने कहा— बेटे, घर और बच्चो की तरफ भी तो देखो।'

लडन्त करके चुके थे कि करीमखा की यह बात सुनी। क्षण भर रुके

और फिर चेहरा रक्त-वर्ण हो गया था। कपडे उठाए, और उस्ताद के आगे माथा टेककर लगड बांधे ही अखाडे से बाहर हो गए। फिर कभी उस अखाडे मे झांका तक नही।

दफ्तर मे हैड-क्लर्क से बडी घनिष्टता थी। बातो ही बातो म वे कह बैठे—'भाई, शादी तुम्हे करनी ही चाहिए।' शायद कुछ ऐसी बात भी कह दी थी, जिसका अर्थ यह हो सकता है कि उनके जसे बलिष्ठ आदमी का स्वच्छन्द रहना समाज के लिए घातक हो सकता है।

बस, वह सारी घनिष्ठता समाप्त हो गई। न सिर्फ यही, बल्कि उस दफ्तर की नौकरी छोडकर एक जगह मुनीमी कर ली।

इसे उन्माद कहें या पागलपन या क्या कहें?

३

मुनीमी करना आसान नही, बडे जीवट का काम है। दस स चार तक की पाबन्दी के बाद का सारा मौज-मजा मिट्टी हो गया। पहले अपने लिए भोजन आप ही पकाते थे, पर अब यह असम्भव हो गया।

मुनीमो म कहार और नौकर की गुन्जाइश कहा, 'ढाबे' म कुछ दिन खाया, तो स्वास्थ्य बिगडन लगा। घर पर बनाने का प्रयत्न किया तो मालिक की भृकुटि और लाल आखें! कसरत और ईश्वर-भजन मे कटौती करना असम्भव! अमरनाथ को जीवन म आफत ही-आफत नजर आने लगी।

ढूढ खोजकर एक ऐसा ब्राह्मण पा लिया, जो सिर्फ रोटी-कपडा लेकर खाना बनाने, बर्तन मांजने, झाडू देने और धोती तक धोने को तयार हुआ। अव्वल नम्बर के त्यागी और सतोषी का मुह उसने बनाया, और अमरनाथ ने सतोष की सांस ली।

विश्वास तो उस पर कर ही लिया, लेकिन सतोष की सास इसलिए ली कि लोगो को ब्याह कर लेने का अनुरोध करने की गुजाइश अब नही रही। कुछ ने यहाँ तक कह दिया था—'यार, ब्याह न करो तो किसी विधवा को घर मे डाल लो, रोटी पानी की तकलीफ तो न रहे। जब जी चाहे निकाल देना!' अमरनाथ यह बातें सुनते थे, और जस जलते तवे पर छौंक पडता था।

जी, तो यह ब्राह्मण महाशय, सीधे-सादे, गरीब, ईमानदार, धमभीरु, साधु* एक दिन जा हाथ लगा, लेकर गायब हो गए।

रो-झीखकर नौकरी पर पहुँचे, तो मालिक की नजर पड गई। मालिक अच्छे 'मूड' मे थे, मुनीम की उदासी का कारण पूछने लगे। यह मुहब्बत पहले-पहल नसीब हुई थी, इसलिए मुनीम जी खुल पडे।

मालिक जानते थे, ब्याह से उन्ह चिढ है, इसलिए वह बात उन्होने न छेडी। बोले—'बडा अफ्सोस हुआ, मुनीमजी, वाकई दुनिया बडी धोखेबाज है, जिस पर विश्वास करो, वही जड काटता है। हरे! हरे!!'

मुनीमजी को धीरज बँधा। ऐसी बात और किसी ने न कही थी।

मालिक फिर बोले—'मुनीमजी, यह शहर है। गर-मातवर आदमी का तो धेले का विश्वास नही करना चाहिए। और आपने हम से क्यो नही कहा? हम किसी मातबर आदमी का इतजाम करा देते। वाकई साहब, यह मरद की जात बडी हेच होती है। मगर औरत का मामला। आप तो घर मे अकेले ह न? अब बताइए दोना तरफ से मुसीबत! किसी औरत को भी कैसे रखा जाय! अरे हा, देखिए।'

अमरनाथ के अनुकूल बातें थी, और बडे मनोयोगपूवक सुनी जा रही थी। सहसा बडे मुनीम न हिसाब किताब के बारे मे कुछ पूछने के लिए अमरनाथ को आवाज दी। उन्हे उठना पडा, पर पाच मिनट बाद फिर मालिक के सामने बठे थे।

शायद मालिक कुछ आवश्यक बात कहने थे। उसी—'अरे हा, देखिए' से शुरू किया—'नुकसान तो जा हुआ, उसे पीछे सुनूगा, घबराने की बात नही है—इस समय तो यह कहता हूँ कि एक बात मेरी समझ मे आई है।'

अमरनाथ सुनने को तैयार हुए, तो मालिक ने कहा—'नुकसान की तो चिन्ता न कीजिए, मेरे रहते आप तकलीफ न पायेंगे, पर मेरी सलाह है।'

---

*नौकर रखती दफा अमरनाथ ने मित्रो के आगे उसके लिए इन्ही विशेषणो का प्रयोग किया था।

वह सलाह यह थी कि मालिक की मिसरानी काफी बूढ़ी हो गई थी। उसकी एक विधवा लड़की थी। बेचारी गरीबनें थीं। दोनों को रोजगार मिलते रहने से बड़ा पुन होगा। अमरनाथ चाहे तो दोनों में से किसी एक को रख सकते हैं। दोनों की विश्वस्तता की गारण्टी मालिक देंगे। वेतन सिर्फ दो रुपए देना होगा। बाकी मदद मालिक कर देंगे।

नुकसान भरपाई के विषय मे मालिक का आश्वासन और मिसरानी का बूढ़ी होना—इन दो सत्यों से वही तथ्य निकला, जो मालिक को अभीष्ट था। यानी मिसरानी रहेगी अमरनाथ के घर, और युवती कन्या मालिक महोदय के रसोई घर का काज लेगी।।

मालिक लखपती थे चालीस पार करने को थे स्थूल थे, शौकीन थे, पान और सुर्मे के आशिक थे और भी बहुत कुछ थे। स्त्री उनकी थी नहीं, गोद का लड़का बोर्डिङ्ग हाउस में रहता था।

४

मिसरानी रहने लगी। दिन भर रहती रोटी करती बर्तन माँजती, झाड़ू-बुहारी देती और रात को चली जाती। अमरनाथ को दुतर्फा आराम मिला इधर रोटी पानी की इल्लत से छुट्टी मिली, उधर मालिक के व्यवहार में भी अन्तर आ गया।

मिसरानी चालीस से इधर थी। शायद पतीस पार न कर पाई हो। वर्ण उसका गौर था पर मैले कपड़े पहनने के कारण यह गौर वर्ण म्लानि पूर्ण हो गया था। यह सच बात है कि अमरनाथ ने महीनो तक उसे उसकी उम्र से अधिक वयस्का समझा और कभी पूरी तरह आंख उठाकर उसे देखा तक नहीं।

एक दिन मिसरानी मालिक के घर से नया धोती जोड़ा लाई। नहा-धोकर बाल सँवारकर उसने पुरानी और मैली धोती को सूखने डाल दिया और महीनो बाद सफेद धोती पहनी।

सहसा अमरनाथ आ गए। तौलिए में सब्जी थी और शरीर मे कमीज। मिसरानी ने बाल बाँधकर धोती पहन ली थी धोती बिलकुल नई थी पतली भी थी सूरज की रोशनी कपड़े से छन रही थी।

अमरनाथ ने भर-नजर उधर देखा। इतने में मिसरानी ने मुंह फिराया। अमरनाथ के नेत्र झुक गए। नेत्र क्या झुके मानो सशरीर गड गए। स्वस्थ मुंह पर सुर्खी आ गई। शरीर कांप गया।

मिसरानी ने न कुछ देखा, न समझा। आकर सब्जी का तौलिया सँभाल लिया और रसोई-घर में घुस गई।

अमरनाथ आकर बैठक में बैठे। पर बैठ न सके, टहलने लगे। टहल भी न सके लेट गए। और फिर दो मिनट बाद ही टोपी पहनकर बाहर निकल गए।

मिसरानी ने आवाज दी—'रोटी में देर नहीं है।'

अभी आया। कहकर अमरनाथ निकल गए। बाजार में एक मित्र मिल गए। बड़े खुशदिल आदमी थे। मिलते ही दो-चार ऐसी बातें सुनाईं कि अमरनाथ की अन्यमनस्कता काफूर हो गई। हँसते-हँसते दोनों घर आए। मित्र भी जबरदस्ती मेहमान बन गए।

दो घण्टे के बाद दूकान पर बैठे-बैठे अमरनाथ की अन्यमनस्कता फिर बढ़ने लगी। लिखने में बार बार अक्षर-भेद होने लगा। औरत! शादी! गृहस्थी! तीनों अक्षर बार-बार नेत्रों के आगे आने और विलीन होने लगे। कई बार उन्होंने सिर को जोर से झटका दिया। पर चिन्ता झटका देने से चिपटती है, झड़ती नहीं।

ससुराल उनकी शहर में ही थी। मालिक की उदारता से लाभ उठा कर उन्होंने कुछ देर की छुट्टी ली, और ससुराल चल दिए।

सास थी। साली नहीं थी। साले भी नहीं थे। एक बच्चा सो रहा था, दूसरा नानी के निकट बैठा था। दामाद को देखकर सास उठ खड़ी हुई, और आसन बिछाकर बैठाया।

सोता बच्चा जाग उठा। अमरनाथ ने दोनों के मुंह की ओर ताका। पत्नी से दोनों की शक्ल मिलती थी। अमरनाथ की आंखों के आगे वह मूर्ति नाच गई। साथ ही गृहस्थी की उन झंझटों और विभीषिकाओं के चित्र भी विचित्र रूप धारण कर-करके आने लगे। औरत! शादी! गृहस्थी!

जब विदा हुए, तो दो चार रोज के लिए छोटे बच्चे को साथ लेते आए।

सीधे घर आए। मिसरानी अभी थी। बरसात का मौसम था, पर धूप निकल रही थी। मिसरानी वही नई धोती बाँधे गेहूँ बीन रही थी। अमरनाथ रास्ते-भर निश्चय करते आए थे कि मिसरानी के मुह की तरफ न देखेंगे, पर घर में घुसे, तो सबसे पहले वहा नजर पडी, और क्षण का अति सूक्ष्म भाग बीतने से पहले ही दिल में आवाज उठी—'शक्ल-सूरत तो बुरी नही है।'

यह हुआ पलक मारते। अमरनाथ फिर मर्माहत हुए। नजर फिर नीची हो गई। मन फिर क्षोभ से भर उठा। मिसरानी गेहूँ की थाली रखकर उठी, और हँसती, ताली बजाती, बच्चे को गोद में लेने के लिए आगे बढी।

जब गोद में लिया तो अमरनाथ का हाथ मिसरानी की छाती से छू गया। साथ ही एक बार उन्हें ऐसा लगा—जैसे सिर पर गिरकर बिजली जमीन में धँस गई। भयभीत नेत्रों से उन्होंने एक बार मिसरानी के मुह की ओर ताका। पर वह बच्चे को लेकर हँस रही थी। अमरनाथ मिनट भर के लिए संशय में पड गये।

मिसरानी हँसी क्या? हाथ के स्पर्श का अनुभव उसने जरूर किया। उसे सकुच जाना चाहिए था या क्रोध की रेख दिखाई देनी। यह हँसना—और लड़के के बहाने हँसना—अचरज में डालता है।

उम्र उसकी ज्यादा तो है नहीं। हद तीस बरस होगी! ऐसी गलती क्यों की? औरत बुरी चीज है! औरत के कारण कितना कष्ट पाया! अब कितना परिवर्तन है! क्या उस मूर्खता की पुनरावृत्ति होगी? मिसरानी को जवाब देना होगा। अभी इसी दम।

खाना रखकर अमरनाथ फिर किसी बहाने से निकल गए। मालिक थे नहीं और भला रोकता कौन?

सीधे घर चले। मिसरानी को अभी जवाब दे देंगे। अब नहीं रख सकते कुछ भी हो जाय।

बादल छा रहे थे! मस्त हवा बह रही थी। सावन समाप्ति पर था।

घर का किवाड खुला था। जाने क्यो—पैर दबाकर भीतर घुसे। रसोई-घर सुनसान था। पडासिनें कही गई थी। सारे मकान मे थी, केवल मिसरानी और छाटा बच्चा!

बच्चे को छाती से चिपकाए मिसरानी चटाई पर पडी सो रही थी। वही नई धोती उसके शरीर पर थी। धोती सिर से और छाती से हट गई थी। अमरनाथ कई मिनट खडे रहे। स्तब्ध और अविचल, जैसे पत्थर की मूर्ति।

फिर एकाएक वह काप गए, माथे पर पसीना आ गया, आखें लाल हो गइ, पर कापने लग।

मिसरानी ने करवट बदली। उसका हाथ बच्चे के शरीर पर जा पडा। बच्चा एकाएक चौंक उठा।

जसे किसी ने गडा खूटा उखाड लिया! अमरनाथ वहा क्षण-भर भी न ठहर सके। पलक-मारते बाहर आ गए। मकान तब भी सुनसान था। वे बेतहाशा दौडकर बाजार मे आए, और किसी एकान्त स्थान पर बठकर शात होन की चेष्टा करने लग।

× × ×

कल उन्होने मिसरानी को जवाब दे दिया है। अब, ब्याह करेंगे! क्या करेंगे, इसका पता हमारे अतिरिक्त और किसे है?

कौडियो का हार

१

बात उस जमाने की कह रहा हूँ जब दूध के दाँत टूटे न थ। या पाँच
बरस का होते-होते सगर कसना सीख लिया था, पर घाम लगती है
आट-नौ तक सारी रात और दिन का अधिकांश नगे घूमने म जसा कल्पना-
तीत सुख मिलता था, वैसा घाती की इल्लत म नही।
पटना गाँव से शुरू होती है। गाँव चाहे शहर की जड म हा, चाहे
शहर स बीस मील दूर, बच्चा के लिए गाँव है। शहर म आयु की एक
खास अवधि तक जाना उनके लिये निषिद्ध है, और निरापद भी नही।
जी, इसीलिए गाँव के जो-जो अनिवाय सस्कार होते हैं, मैं उन सबम
पारङ्गत था।
कितने बडे आदमी का बेटा था—इसकी याद या तो कभी-कभी माँ
तब दिला देती थी जब मुझे मेरी आवारगी के लिये डाँटती थी, और
साथ-ही-साथ पूवजो के धन भण्डार का बखान करती थी, या फिर—
तब मालूम हुआ जब शहर मे जाकर पिताजी ने जबदस्त गल्ले की आढत
शुरू की और अग्रेजी स्कूल म खानदान की इज्जत चिरस्थायी रखने के
लिए बहुत से अँग्रेजी सूट सिलवा दिए थे।
खर किस्सा गाँव का था। नौ बरस का कमसिन बच्चा। एक हाथ
टूटा हुआ तार का घेरा दूसरे मे घेरा चलाने की लकडी, सिर पर धूल-
रित जरीदार टोपी बदन म कीचड से पुता हुआ रेशमी कुरता और
नीचे—बस कोरा घासलेट। आस-पास जिगरी यारा का जमघट।
नम मगी थे तीन चमार तीन ब्राह्मण और कितने माली राजपूत

कुम्हार के कुल-दीपक थे—इसकी ठीक-ठीक गणना स्मति के तख्ते पर बाकी नही रही।

यह हमारी मण्डली का परिचय था। यो तो सभी दोस्त थे, और दूसरे गावो के लडको से कभी युद्ध छिडता, तो सब-के-सब मिलकर घुटने टेक देते थे, पर ईमान की बात यह है, कि सारी मण्डली मे जिगरी दोस्त था—तो एक चुन्नी मगी का!

इसका परिचय देते हुए गला भरता है, पर कहानी म रस और मस्ती न हो तो वह कहानी नही। इसलिए, सुनिए—रग उसका काले आबनूस की तरह चमकता था। और आश्चय! रग के साथ दातो की सफेदी का भी उसमे सामजस्य था। उम्र होगी कोई दस साल की, आखें बडी-बडी, हमेशा एक लँगोट बाधे रहता, और कन्धे पर हल्की सी लाठी लिए रहता। घर म घडा-भर भरके रुपये आने की बात, मा की डाट की बात, गुरुजी, ठाकुरजी, रसोई घर और पेशाब-पाखाने की बात तक उससे कह देता था। यह भी कह दू—कि तासीरे इश्क इक-तरफा न थी, उधर भी वसी ही सफाई थी।

पिताजी के विषय मे ज्यादे कहने की जरूरत नही, क्योकि कहानी से उनका सम्बन्ध नही। वे तो मेरी आदतो से सख्त नाराज रहते थे, और एकाध कारण से तो उन्होने मेरे हाथ का पानी पीना भी छोड दिया था। शायद आप इस कहानी मे कला की खोज करने लगें, इसलिए वे कारण भी बता दू। एक तो यह, कि मैं जाडो मे छमासी और गमिया मे इकमासी स्नान करता था, दूसरा यह—कि मैं अक्सर जगल मे पाखाना फिर आया करता था, फिर धान की याद न रहती थी, और आते ही खाने पर बठ जाता था!

तो, चुन्नी मे बन्दे की खूब घुटती थी। हमारे इस बेढगे याराने पर सारा गाँव थू थू करता था। पर हम हमेशा उन लोगो मे रहे, जिनके लिए 'कान्ने चलने और कुत्ते भूकने' का वाक्याश उपयोग मे लाया जा सकता है। सभी ने जोर मार लिया, पर हमारी यारी मे बाल-बराबर भी फक न पडा। लोगो ने जो-जो जोर लगाए, उन सबका सग्रह करूँ, तो ग्रथ बन जाय, इसलिए सबको सान्‍ह-आने भूलकर सिफ उसका उल्लेख करूँगा,

जिसे नींव मानकर ही इस कहानी की दीवार खड़ी की गई है।

१

चुन्नी के अतिरिक्त उसके किसी कुटुम्बी से मेरी घनिष्ठता न थी। उसका बाप एक कोने में खाट पर बैठा, चिथड़ों में लिपटा, नारियल हुक्के लिए खाँसा करता था। उसे देखकर मेरी आँखें चमक उठतीं फिर कि पास खड़े हो आने का उपक्रम किया करते थे, और चुन्नी को बुलाकर साथ ले जाने में मैं अधिक-से-अधिक तत्परता बरतता था। इसका कारण था— मेरे जाते ही वह चुन्नी पर बक-झक करने लगता था। बच्चे की समझ —मैं समझता था, सारे गाँव की तरह यह भी मुझे अव्वल दर्जे का छंटा हुआ मानता है और अपने सुपुत्र का मेरे साथ हिलना मिलना पसन्द नहीं करता। पर उसकी भाव-भंगी पर ध्यान देकर अब विचार करता हूँ, तो पाता हूँ—बात इससे दूसरी था। गाँववालों ने दोनों यारों की दोस्ती तोड़ने के जो-जो प्रयत्न किये थे, एक उनमें यह था—कि चुन्नी के बाप सूरत को बुलाकर खूब डाँटा गया कि कभी अपने घर में न घुसने दे, और अपने लड़के को कभी मुझसे न मिलने दे। पर सूरत सिर्फ दिखाव के लिए चुन्नी को डाँट बैठता था मुझे डाँटने या घर न आने देने की उसकी कहाँ हैसियत थी?

खैर, बाप से तो इसीलिए घबराता था, माँ चुन्नी की मर चुकी थी। एक बड़ा भाई था वह अव्वल दर्जे का आवारा और बदमाश था। घर में कभी-कभी ही आता था। मेरे प्रति समभाव रखता था। मुझसे उसकी बहुत कम भेंट हुई, और बहुत कम बात हुई।

एक चुन्नी की बहन थी—चुन्नी से कोई एक बरस छोटी। शहर जितना सौन्दर्य चाहे गाँव में नहीं मिल सकता पर यह बात भी पक्की है कि गाँवों-जैसा सौन्दर्य भी शहरों में मिलना कठिन है।

यह भंगी की छोकरी। मुझे याद नहीं सौन्दर्य की क्या व्याख्या मेरे दिमाग में उस समय थी पर मुझे वह बेहद भाई। चुन्नी के साथ दोस्ताना ो था ही, उसकी बहन से भी तबियत में उन्सियत पैदा होने लगी। इस डकी को चौपड़ की कौड़ियों और खिलौनों का बहुत शौक था। मैंने सर घर से उसे बहुत सी कौड़ियाँ ला दी थीं। कभी-कभी मिठाई,

बताशे और खाड गी ला देना था।

यह कौडिया, जो मैं उसे लाकर देना था, गाँव म बडे महत्व की दृष्टि से देखी जाती है। छोटे बच्चे इन्हे छूते भय खाते हैं। ग्रामीण-संस्कृति म मैं अब तक इस अजीब प्रथा को देखता हूँ, कि बाप, मामा, ताऊ, भाई---सब अपनी-अपनी मण्डलियो म, दीवाली की तीनो रात इन कौडिया का उपयोग करते ह और हमारे जैसे बच्चा के मन मे उनके प्रति भयानक भय, सम्मान और घृणा भर दी जाती है।

जी, इन्ही कौडियो के दान स मैं चुन्नी की वहन को सम्मानित किया करता था।

यह बातें उस जमाने की हैं, जब चुन्नी की वहन को दुलहिन बनाकर और अपन को दुलहा बनाने म न मुझे कुछ सकोच था न चुन्नी को एतराज। बच्चा म यह खेल कैसा स्वाभाविक और प्रचलित है, इसे हिन्दी का पाठक खूब समझता है। आप सुनकर हसिये नही कि हम माँ का एकाध लँहगा लाकर चुन्नी की वहन को बहू बनाते, और पिताजी की शेरवानी और साफा लाकर खुद बनते दुल्हा, और चुन्नी सिर पर फटा हुआ दुपट्टा बाँधकर हफ्ते मे कई बार किसी एकान्त-स्थान पर कन्या का पिता बनकर बडे ठाठ स हम कन्या-दान किया करता था। दो-चार जिगरी यार-दोस्त, जो बराती बनते थे उनका नाम मुझे इस समय याद नही।

३

हाँ तो---चुन्नी के साथ मेरा सम्बन्ध-विच्छेद करने के जो-जो उपाय गाँववालों ने किए, उनम स जिस एक को नीव मानकर इस कहानी का निर्माण हुआ, उसे कहने का मैंने वादा किया है। वही बात अब आ रही है।

चुन्नी की वहन का नाम था धपिया। धपिया की सुन्दरता के विषय म जितना कह सकता था---कह चुका। इसस ज्याद कहना गलत-बयानी होगी, क्योंकि उसका उस समय का रूप मुझे ठीक याद नहा।

यह कहानी प्रधानत धपिया की है। इसलिए पहले चुन्नी का जिक्र छेडना मेरी राय म कला-सगत नहीं। पर किसी कहानी म कला के सब

प्रतिबन्ध तोड डालना, और कहानी की मजेन्दारी म फरक न आने दना भी तो मेरी समझ म मामूली 'कला' नही है। वैसी-ही कला पाठक इस कहानी म पायेंगे।

तो—गौडिया, बताशो और मिठाइयों की बात पापी दुनिया के कानो मे बेहद अतिरञ्जित होकर पहुँची। अब तो कलियुग की भयानकता पर ओठ फट गय। दस और नौ की उम्र में कसे विश्वास किया जाय? एक बार ता एमा जान पडा— गाँव-भर की लाञ्छना का शिकार मैं बन गया हू। जिम दखता हूँ, मुझ पर उँगलियाँ उठाता है जिससे सुनता हू पपिया का नाम सुनता हूँ जहाँ रही रुकता हूँ—घार कलिकाल पर भया नक अट्टाहास सुनाई दता है। रे भगवान—यह हो क्या गया!

तीन दिन मैं चुन्नी क घर भाँका तक नही, ज्यादा समय गाँव के बाहर कच्च तालाव क किनारे, कीकर की छाह म बीता। मुह लटककर बटुआ सा हा गया। माँ न मुझे डाँटा नही पिताजी दखकर मूछो मे मुस्कराय।

पर यह दवा अस्थायी थी। चौथे दिन चुन्नी ने जा पकडा। कपडा बिछाकर मैं कीकर क नीचे सो रहा था। धडाम-से आकर कोई ऊपर गिर पडा। चुन्नी कह रहा था—'क्यो आडी क्या अब भूल जान का इरादा है?

मुझे खूब याद है—मैं रो पडा था। आसू जस धिक्ल आये थे। बिना कुछ सोच मैं चुन्नी क गल से लिपटकर रोने लगा।

इसक बाद तो घत्तरे गाँववालो की। किसकी बदनामी किसकी थू थ—सब मिनटो म साफ हो गई। वही दोस्ताना वही हँसी-खेल वही आवारगी और दो चार दिन बाद वही कन्या-दान का स्वाग।

४

सिन बरस बारह का हुआ दिमाग म समझ की कोपलें फटने को हुइ चेहरे पर गाम्भीय के लक्षण दीखने लगे ब्याह शादी के विषय मे भी अनिवाय ज्ञान-वद्धि होने लगी साथिया से जरा जरा कटने लगा, स्नान रोज करने लगा और कपडे जरा ज्यादा साफ रहने लगे। पिता मुझ

अँग्रजी की तालीम देना चाहते थे। छोटे-मोटे जमीदार अभी तक कलक्टर साहब से कृपा-पात्र बनने के लिए लडको को अँग्रेजी शिक्षा दिलाना आवश्यक समझते हैं। वही सनक पिताजी पर सवार हुई।

नागरिकता का भूत भारत पर धीरे-धीरे चढ रहा है। दस वर्ष हुए—तब भी यह भूत इसी गति से चढ रहा था। पिता ने खूब रुपया लगाकर शहर मे आढत की दूकान खोली। चार-छ महीने बाद, जब दूकान जमने लगी, हम लोग भी शहर जाने की तैयारी करने लगे।

सिर्फ बूढी दादी को गाँव रहना था। कोठी पर चौकीदार-जमादार पूर्ववत् रहते थे। बाकी सब परिवार शहर जाने की तयारी करने लगा।

पाँचवीं क्लास तक मैं गाव के स्कूल मे पढ चुका था। इस स्कूल के पडितजी जमीदारी का जरा लिहाज न करते थे, जरा गलती हुई कि चुटिया पकडकर चाँटा रसीद कर दिया। सुना था—शहर मे शिक्षक छात्र का मार नही सकता, वहाँ बडी मौज है, शाम को बाग मे गेंद-बल्ला खेलो, सुबह खा-पीकर स्कूल जाओ, और शाम को तीन-चार बजे लौट आओ। और वहाँ अँग्रेजी भी पढाई जायगी। नई-नई पुस्तकें पढने को मिलेंगी। पण्डितजी के अत्याचार और हर-घडी पढने मे पिले रहने के आगे जब इस पुष्पित भविष्य की कल्पना की, तो मैं अनेक बार हर्ष से फुदक उठा।

धोबी सबके कपडे दे गया, नाइन आकर बलैयाँ ले गई, मिसरानी ने आशीर्वाद दिया, पुरोहितानी ने अपना पुराना नाच नाचकर माँ को प्रसन्न किया, और माँ ने सब का यथोचित सत्कार कर, विदा किया। जाते समय सभी की आँखों मे आँसू भरे हुए थे।

वह दिन लँगोटिया से मिलने मे बीता। पण्डितजी को सूरत दिखाने की मरी हिम्मत न हुई। बाकी सब साथी अच्छी तरह मिले। घुग्गी से विदा लेने मे कुछ खासियत न थी। जब से शहर जाने की चर्चा हुई थी, तब से बहुत-कुछ कहा-सुना जा चुका था। अब जब अन्तिम क्षण आया तो उसने हँसकर दाँत दिखा दिए और हाथ आगे बढाकर कहा—

देखो, भूल न जाना।'

बस, उत्कट मित्र ऐसे अभिनय-हीन भाव से विदा हुए।

अजी, आप बुरा न मानिए, एक अभाव दिल में कई बार खटका। चुन्नी की बहन को मैंने कहीं न देखा। उम्र जरा बढ़ गई थी और कपड़े नये पहने हुए था, इसलिए खूसन के घर मे घुसने तक की मेरी हिम्मत न पड़ी। सच कहूँ, उसे पाने की मैंने कोशिश ही न की। एकाध बार कुछ खिंचाव-सा हुआ, पर शहर देखने के चाव म सब-कुछ भूल गया।

हलके छकड़े को हमारे यहाँ ताँगा कहते हैं। जमीदार का ताँगा सब से बढ़िया होता है। इसी ताँगे म सब सामान लादकर मैं सपरिवार सवार हो गया। बहुत-से सगी-साथी, गाँव के मर्द-औरतें, यहाँ तक कि बहुत-से ढोर भी, हमारे ताँगे के चारो तरफ रोनी सूरत बनाये खड़े थे। अब सोचता हूँ तो उस मौके को 'फेअरवेल एड्रस' का ग्रामीण सस्करण समझता हूँ।

मेरी माँ अनेक स्त्रियो के साथ गले मिल-मिलकर रोई। जब गड़वाले ने कई बार हाँक लगाई—'साहनी, दिन छिप जायेगा, देर न करो।' तब कही माँ को छुट्टी मिली।

मैं तब तक इतना भावुक न था। मेरी आँखो से एक आँसू न निकला। मैं गौरव और आनन्द भरी नजरो से चारो तरफ ताकता था और जिस साथी पर मेरी नजर पड़ती थी, ओठो ही ओठो मे मुसकरा देता था।

ताँगा गाँव से आधा मील निकल आया। गाँव छूटने का खेद धीरे धीरे शुरू होने लगा था। वह खेल वह आजादी, वह साथी शहर म कहाँ मिलेंगे? वसी दोस्ती किससे पटेगी? चुन्नी जैसा जिगरी कहाँ से पाऊँगा?

चुन्नी की बहन की बात मेरे मन मे चोट मारने वाली ही थी, कि अकस्मात गड़वाला चिल्ला उठा और उसने गाड़ी ठहराकर एक-सास म सकड़ो गालियाँ दे डाली। पूछने पर मालूम हुआ—कोई गाड़ी के नीचे आता आता बच गया है।

गड़वाला नीचे उतर चुका था। हम सब व्यग्र बने बठे थे। सहसा गालियो की बौछार के साथ, उसने पीली ओढ़नी, लाल घघरी पहने एक छोकरी को गाड़ी के नीच से खीचकर निकाल लिया और उसके ऊपर

घूघट उतारा, तो यह देखकर मैं अचरज से उछल पडा—कि वह छोकरी धपिया थी !

उसे देखकर मैं गाडी से उतर पडा। चोट उसे जरा भी कही न लगी थी। माँ ने उसे पहचाना, और नाम लेकर उसे पुकारा। मैंने देखा—आखें उसकी आसुओ से भीग रही थी। उसने एक बार मा की तरफ देखा—और फिर अकस्मात मेरे परो से लिपट गई।

गडवाला, 'हैं ! हैं !' करके चिल्ला उठा—'अरे, भैया को छू लिया, रांड की राड ! अब नहाना पडेगा, और लगी घण्टा भर की देर !'

माँ ने कहा—'नही रे, नहाना धाना क्या—पानी छिडक दूगी, काफी है। बच्चे है, साथ-साथ खेले हैं। परले गाँव से आ रही होगी, देखकर जी उमड आया।'

तब पुचकारकर छोकरी से बोली—'जा, बेटी, जा, अपने घर जा, हम लोग जल्दी ही लौटेंगे। राजी-खुशी रहियो। ले, यह मीठी पूरी ले, खा लीजियो। और यह चार पैसे ले, इनकी मिठाई खाइयो।

फिर मुझसे कहा—'चल इधर, पानी का छीटा दू—तब आकर बैठ गाडी म।'

इतनी देर म हाथ उसके मेरे पैरो से छूट चुके थे। गडवाले ने मीठी पूरी और चार पैसे उसके पल्ले पर डाल दिये, और मैं जल छिड़काव के बाद गाडी मे बैठा।

तांगा जब तक मुड न गया, मैंने उसे उसी जगह, ज्यो-की-त्यो जमी देखा। मैं आँखें फाड-फाडकर उसकी तरफ ताकता रहा। जब गाडी मुड गई, तो कुछ देर तक मेरा मन उदास रहा। फिर जो इस घटना को भूला, तो बरसो बाद याद आई।

५

बरसो बाद गाँव लौटने का इत्तफाक हुआ। अभी की तो बात है, कोई एक महीना बीता होगा। अब तो रेलें आ गई हैं। उन बातो को आ[illegible] तो बीते ही होंगे। कॉलिज की किसी क्लास म पढ़ता हूँ। गाँव में [illegible] का देहान्त हो गया, उधर कॉलिज की छुट्टियाँ था, इसीलिए इस बा[illegible]

मौज और कॉलिज-लाइफ का मजा छोडकर देहात गया था। उधर प्रोफेसर नए आए थे। वे सदा किसानों की सेवा का आदर्श हमें दिया करते थे। उनका आग्रह था, कि इस बार अपनी जमींदारी में जाकर किसानों की दशा देखूँ—और उनके बताए हुए मार्ग से किसानों के उद्धार का उपाय सोचूँ।

पर वह सब-कुछ न होना था, न हुआ। सारा दिन ताश खेलने या उपन्यास पढ़ने बीत जाता। शाम को सैटन की इच्छा होती, और रात का कुछ भाग बीत जाता, पुराने साथियों पर रोब गाँठते।

आखिर एक दिन दिल पर बहुत जोर डालकर, अर्दली को साथ लेकर और ताँगे में सवार होकर अपनी ही जमींदारी के एक गाँव में पहुँचा। पढ़ने में मेरी तेजी की, और कलक्टर साहब से बात करने में मेरी लायकी योग्यता की बात सुन-सुनकर गाँववाले मुद्दत से मालिक के बेटे को देखने के लिए उत्सुक थे। आज मेरी पहुँच के पहले से ही सब लोग उजले कपड़े पहने, हँसते हुए स्वागत को तैयार थे।

प्रोफेसर साहब के बताए हुए बहुत-से प्रश्न मैंने उन लोगों से किए। पर कुछ पता न लगा। सब प्रफुल्ल थे। सब अपने को खुशहाल बताते थे। सब मेरे दिल के गुण गाते थे, और मेरे चारों तरफ बलैयाँ लेने की उत्सुकता प्रकट करते थे।

मैंने गाँव के सब बच्चों को एक एक चवन्नी दिलवाई, अछूत बालकों के लिए एक एक जोड़े का प्रबन्ध किया, और मुखिया और गाँव भर के ब्राह्मणों के लिए एक एक दुपट्टे की व्यवस्था कर, वापस लौटा।

गाँववालों के विषय में प्रोफेसर साहब के वे दयनीय चित्रण मुझे गलत जँचने लगे, और तब मैं उनकी बात को एकदम भूल सा गया। ग्राम सुधार की भावना का भी तब से अभाव हो गया है। लौटने का समय निकट आता जा रहा था।

एक दिन शाम को मैं गाँव से बाहर निकल पड़ा। अँधेरा होने को था। उसी कच्चे तालाब के पास खड़ा था, जिसमें चुन्नी के साथ गोते लगाया करता था। इतने में देखता हूँ—एक तरफ से चुन्नी आकर खड़ा हो गया।

चुन्नी से अब तक मुलाकात नही हुई थी। सुना था, ब्याह उसका हो चुका है, और वह अब अच्छा लडका जवान बन चुका है। बात वाकई सच थी। देखकर मैं मुस्कराया, और कहा—'क्यो रे—प्रसन्न तो है?'

उसने सिर घुमाकर मेरी तरफ ताका। मुख की भावभगी, मैं उस अँधेरे म देख न सका। उसने एक बात न कही, और मुह फेर लिया।

मैं एक बार दहल-सा गया। बचपन की उस दोस्ती और इस वक्त के उपेक्षापूण प्रश्न का तुलनात्मक रूप अकस्मात मेरे सामने आ गया।

अब चुन्नी ने गम्भीर कण्ठ-स्वर से कहा—'आडी, आज ऐसी बात करते हो? वह वखत भूल गए? हाय रे दुनिया!' यहा तक कहकर उसने एक ठण्डा सास लिया, और उसी सिलसिले म कहता रहा—'आडी, जाती बेर के सब वादे भूल गए? तुमने एक कागज भी न लिखा। मैं यहा किसी स पढवा लेता। मैं कई बेर शहर गया, तुमसे मिलने की कोशिश की, पर न मिल सका। दूकान पर तुम मिले नही, पूछता-पूछता स्कूल तक गया। वहा की शान-शौकत से डरकर मैं तुम्हारा नाम भी न ले सका। चपरासी न मुझे मारकर बाहर निकाल दिया '

अहकार से चूण, जमीदार के ग्रेजुएट बेटे की करुणा जागने की आवश्यकता नही पाती थी। सहसा कोई मेरे पैरो मे आ लेटा। अँधेरे मे पहचान न सका। चुन्नी ने उसे जान लिया। बोला—'यह मेरी बहन है बाबू साहब—वही, जिसके साथ आप रोज ब्याह किया करते थे, और गाववाला की बदनामी की जरा परवा न करके जिसे बहुत सी चीजें ला दिया करते थे। आपके शहर जाने के बाद हमने घोट घाटकर इसका ब्याह कर दिया था। यह ब्याह कराना नही चाहती थी। एक दिन मैंने अकेले मे पूछा, तो इसने उस आदमी के साथ ब्याह करने की इच्छा प्रकट की, जिसे मैं बौने क लिए चाद समझता हूँ, और जिसका नाम आपके सामने लेन की मेरी हिम्मत नही पडती। खैर, शादी हो गई, पर बरबादी भी साथ-ही हो गई। ससुराल मे एक दिन इसने सुख नही पाया। स्वामी की सेज पर कभी इसने पैर न धरा। इसने कसम खाकर मुझे बताया। इस पर इसके मरद ने इसे बेहद मारा। तब लठिया हाथ मे लेकर मैं बाबा (पिता) इसे लिवा लाये। हमने और कही कराव कराने क

थी, पर इसने एक न मानी। बस, यही कहना चाहता था। अब तुम मेरे आदी नहीं हो, इसलिए तुम्हें सलाम करता हूँ।'

कहकर चुन्नी गायब हो गया।

चाँद खिल चुका था। चाँदनी में किताब पढ़ी जा सकती थी। चुन्नी दूर जाता हुआ दिखाई दिया। चारों तरफ सुनसान चाँदनी थी। सहसा मोजे में होकर आँसुओं ने मेरे पैरों को भिगोया। मैं एकदम से पीछे हट गया।

शायद उसे लग गया। मुँह से उसके चीख निकल पड़ी। चोट शायद ज़ोर से लग गई।

कपड़े उसके गन्दे और चिथड़े थे। मन की करुणा बहुत कड़ी हो चुकी थी। उसे रोते देखा था, तो विरक्ति हुई थी, अब उसे चोट मारकर लज्जित होने के बजाय मैं उस पर कुपित हो गया। आखिर मेरे द्वारा ऐसा गुनाह होने का मौका उसने मुझे क्यों दिया ? छि ! गन्दी लड़की!

शहर में भर लिए दिखता की याद आ रही थी। बहुत-सी मरी इन्हीं आँखों के सामने घूम रही थी। यह लड़की ! छि ! गन्दे कपड़े ! मुँह से लार टपकती हुई ! सड़ी-सी चुनरिया ! गन्दी-सी घघरिया ! सिर में गन्द भरी हुई ! छाती में गुदने गुदे हुए। (चूनरी परे जा पड़ी थी, इसलिए छाती भी दिखाई दे गई थी)।

मेरा मन क्षोभ और घृणा से भर उठा। मैंने चारों तरफ देखा और भागने के लिए कदम उठाया। अकस्मात उसने सिर उठाया। अब इस स्थिति में हूँ, कि वह सकूँ—कि वर्षों की तपस्या में जलकर सौन्दर्य का सारा रस वह सुखा चुकी थी। उस वक्त मन में कहा—'छि चुड़ैल !'

जी, तो सिर उठाकर उसने कोई चीज मुझ पर फेंकी। मुझसे लगकर वह जमीन पर गिर पड़ी। मैं एक बार चिहुँक उठा, फिर ध्यान से देखा—वही कौड़ियाका, तागे में पिरोया हुआ हार था, जो मैंने माता-पिता की चोरी से समय समय पर ले जाकर उसे दी थी।

जाने क्या समझकर वह हार मैं लेता आया। अब वह मेरी मेज की दराज में रखा है। कभी-कभी उस पर नजर भी पड़ जाती है।

छि ! पागल लड़की ! क्यों पाठक, भला वह पागल थी, या मैं पागल हूँ ?

पाँच रुपये का कर्ज

१

उस दिन धोती पहने एक सज्जन ने आकर कहा—मैंने सुना है, आप उर्दू मे प्रकाशन करने जा रहे है ?'

मैंने जवाब भी न दिया था, कि उन्होने झट फिर कहा— मैं अभी-अभी 'चन्द्रगुप्त प्रेस' म बैठा था—वहा आपकी किताबें छपती हैं न—कि जिक्र छुआ गया, आप अपनी किताबो का उर्दू-अनुवाद कराना चाहते है। अगर सचमुच आपका वैसा इरादा हो, तो मेरी खिदमत ।'

मैंने कहा—'जी, इरादा तो बेशक था प्रेसवालो से एक दिन जिक्र भी किया था, और एक अच्छे अनुवादक की तलाश करन का भी कहा था ।

मेरे वाक्य की 'तो' और 'भी' से वह उत्तरांश जानने को उत्सुक हुआ, और जब मैंने बताया कि किसी कारण-वश विचार स्थगित हो गया है, तो सूखी हँसी हँसकर बोला— खर, तो कुछ कहना ही बेकार है।'

तब तुरत ही 'अच्छा तो आदाबअर्ज' कहकर ऊर्ध्व गति का उपक्रम किया ही था, कि मेरी स्वाभाविक व्यावसायिकता जाग उठी। बोला—'जी, अपनी तारीफ तो कीजिए। कहाँ से आना हुआ ?'

जवाब जब दे देना चाहिए था, उससे कोई दो सेकड ज्यादा देर लगाकर वह बोला—'जी' नाम मेरा दीनदयाल है, इलाहाबाद के एक प्रेस मे नौकर हूँ हिन्दी से उर्दू और उर्दू से हिन्दी मे अनुवाद भी करता हूँ। बस, यही मेरी तारीफ है।' आखिरी वाक्य कहते-कहते फिर उसके ओठो पर हँसी दिखाई दी।

आदमी म कुछ खासियत मालूम हुई, इसलिए मैंने बात शुरू कर दी। तब तो बहुत-सी बातें मालूम हुई। एक प्रसिद्ध नाटककार महोदय उनके पिता थे। जब मैंने पूछा—'आप उनके पास क्यों नहीं रहते ?' तो झट जवाब दिया—'जब खुद कमा सकते हैं, तो उन्हें क्यों तकलीफ दें ?'

उसने और मैंने साथ ही अनुभव किया कि मैं उसकी बात से प्रभावित हुआ हूँ। जब मेरी बातें खत्म हो चुकी, तो वह बोला—'आपने कुछ किताबें भी तो छापी हैं ?'

जी हाँ, कहकर मैंने नौकर को सकेत किया। उसने किताबों का सेट मेज पर ला रखा।

बड़ा सुन्दर प्रकाशन है !' उसने देखते ही कहा—'अच्छा, देखिए मैं अपने पुस्तकालय के लिए एक-एक प्रति लेना चाहूँगा।'

अब मैं घबराया। व्यर्थ पचीस-तीस रुपये का माल हज्म करना चाहता है ! बात टालने की गज से बोला—'जी, आप आपका पुस्तकालय भी है ? निजी, या सार्वजनिक ?'

उसने मेरा भाव ताड़कर कहा—'है तो निजी,' पर और लोग भी आ जाते हैं। हाँ तो आप सब पुस्तकों की वी० पी० कर दीजिएगा।'

सुनकर मन-सा पड़ गया। पर तुरन्त सम्भलकर बोला—'खैर, वह तो हो जायगी, हाँ, यह बताइए, इलाहाबाद मे आजकल बाजार कैसा है ?'

मन के भाव छिपाने के लिए जैसा बेढंगा प्रश्न किया गया था, शायद उसी तरह का कुछ जवाब भी दे दिया गया।

दो मिनट बाद ही पता वगैरह लिखवाकर वे विदा हो गए।

पार्सल उसी वक्त बँधवा लिया वी० पी० अगले दिन जाती थी। मैनेजर साहब से कहकर रोजनामचे म नाम भी लिखवा दिया।

२

अगले दिन दस बजे वे फिर आ मौजूद हुए। इस बार पतलून मे थे। चेहरा उदास था। चुपचाप कुर्सी पर बैठ गए।

मैं एक ग्राहक से बात कर रहा था। थोड़ी देर मे सौदा तय हो गया,

और उसने ५५ रुपये के नोट मुझे दिए।

मनेजर साहब किसी काम से भीतर चले गए थे, कि उनका मुंह खुला। बोले—'वह वी० पी० अभी भेजी तो नही होगी ?'

'मैं डरा, ऑडर कैन्सिल हुआ। झट बोला—'भेज ही रहा था, क्या आप खुद ले जायेंगे ?'

'खुद ?' उसने कुछ सोचकर कहा—'खुद ही ले जाऊँगा, रुपया मनी-आडर से भेज दू ?'

'मनीऑडर स ?' मैंने इधर-उधर करके कहा—'आप कब तक ठहरेंगे ?'

बस, शाम को जा रहा हूँ।'

'मेरा मतलब है, दो किताबें अभी तैयार नही हैं, कल तक अरे दफ्तरी '

दफ्तरी के आने के पहले ही उसने कहा—'खर' तो आप रेल-पासल-द्वारा भेज दीजिएगा। देखिए पाम्ट पासल स दाम ज्यादा खच होंगे, रेल से भेजें, किन्टी की वी० पी० कर दें। और हाँ, पैकिंग और रजिस्ट्री के क दाम हमसे न लगायें।'

'अच्छा !' मैंने व्यापारिक मुस्कान फेंककर कहा, 'आपकी आज्ञा कसे टाली जाय ' और हाँ, देखिए, कल एक बात कहना भूल गया था। हमारे यहा बाहर की पुस्तकों का भी स्टॉक रहता है। कहिए तो कुछ दिखाऊँ ? इसी पासल के साथ भेज दी जायेंगी, खर्चा भी कम लगेगा।'

'साहब, क्षमा कीजिए !' उसने एकदम बेहद नरम होकर कहा, 'जो किताबें जहा से छपें वही से मँगवानी चाहिए। मेरी तो यही नीति है।'

'ठीक है।' मैंने झट दाँत निकाल दिए, 'वास्तव म यही नीति होनी चाहिए। ऐसा न होने से छोटे प्रकाशकों को उचित प्रोत्साहन नहा मिलता।'

इसी विषय मे और दो एक बात हुइ। जब रग कुछ जमा नही, तो मैंने पूछा—'आप आज कुछ उदास जान पडते हैं ?'

जी, कुछ नही,' उसने जसे चौंककर कहा, हाँ, यह बताइए, की वी० पी० आप कर रहे हैं ?'

मैंने पूछकर बताया—'सत्ताईस रुपये, सात आने भी—खर्चा नहीं लगया है।'

धन्यवाद !' उसने कहा—अच्छा, अब एक कष्ट आपको देना चाहता हूँ। है तो सकोच की बात, पर मेरी आदत रिश्तेदारों से आगे झुकने की नहीं है। बस यहाँ कई जगह सम्बन्ध है। पर आप ऐसा कीजियेगा, पाँच रुपये मुझे दे दीजिए, ये रुपये भी इसी वी० पी० में जोड़ लीजिए।'

अब तो मेरे कान खड़े हुए। मैंने टालने के इरादे से कहा—'रुपये तो साहब, इस वक्त फालतू नहीं है।

'तो जो फालतू हो वह दे दीजिए। ढाई रुपया मेरे पास है दो रुपये तेरह आने और चाहिए।

कहते कहते वह ज्यादा उदास हो गया।

'क्या मतलब ?' मैंने पूछा—'क्या जरूरत आ पड़ी ?'

जी, इलाहाबाद तक के लिए किराया '

क्या हुआ ? बताइये तो ?' पूछने पर उसने ऐसी आवाज में कहा— साहब, क्या बताऊँ मेरी Folly है।

मैंने आग्रह किया तो उसी ढंग से बोला—'क्या बताऊँ—I lost my purse, आज आठ बजे तक तो थी, कुछ फल खरीदे थे। फिर दस मिनट बाद देखता हूँ तो गायब !'

फिर भी मैंने उसे टालना ही चाहा। पर अठाइस रुपये की किताबें बिक रही थी। यह लोभ बड़ा घातक था। सोच विचारकर मैंने कहा— देखिए, मुझे बड़ा खेद है, आफिस में तो फालतू रुपया है नहीं, कुल सत्तर रुपये के करीब है सो शाम को सौ रुपये प्रेस में भेजने है। आप एक काम कीजिए। बाजार में हमारी दूकान है, मैं चिट्ठी लिख देता हूँ वहां से रुपये आपको मिल जायेंगे।

बिना एक खास निशान बनाये, दूकानवाले मेरी चिट्ठी पर भी किसी को धेला नहीं दे सकते थे। ऐसे ही मौका के लिए उन्हें पहले से साध लिया गया था।

उसने तुरत ही कहा—'और जो दूकान पर नहीं मिले ?'

मैं बोला—'अजी, मिलेंगे क्यो नही, क्या दो चार रुपये भी न होंगे?'

क्षण भर रुककर उसने कहा—'साहब, मैं भले घर का लडका हूँ, इस वक्त मुसीबत म पड गया हूँ। आपके सामने हाथ फैलाते ही मैं शर्म के मारे मरा जरा जा रहा हूँ, अब मुझे दूकान पर भेजकर ज्यादा जलील न कीजिए।'

मैं द्रवित हो गया। फिर भी चालाकी ने साथ न छोडा—'तो इसमे हर्ज क्या है? देखिए न, यहा तो फालतू है नही, शाम को प्रेस भेजना है।'

'आप इस वक्त यहा से दिलवा दीजिए। फिर शाम तक आदमी के हाथ दूकान मे मँगाकर इसमे मिला लीजिएगा।'

अब तो सब नाके बन्द हो गए। एक मिनट मे कई बातें मन की आँख को दिखाई दे गइ। अठाईस रुपये की वी० पी० है। दूकान पर न मिले, तो फिर यहा आयगा! और इतने प्रसिद्ध नाटककर का लडका, ऐसा स्वाभिमानी, पुस्तका का ऐसा शौकीन, भविष्य मे मुझसे लाभ की आशा रखने वाला—क्या चार-पाच रुपयो के लिए बेईमानी कर जायेगा? और फिर बातो से भी कही जरा से सन्देह की भी गुजाइश नही मिलती।

तब सोच विचारकर मैनेजर साहब से पाच रुपये का एक नोट उसे दिलवा दिया। साथ ही साथ यह भी कहा—'यह वी० पी० तो भिजवा दू न?'

'वाह! क्यो नही?' उसने हँसकर कहा—'आपका यह उपकार जन्म भर न भूलूगा।'

और चल दिया।

२

वी० पी० भेज दी गई और चार दिन बाद वापस आ गई। मुझे खबर मिली तो माथा ठोक लिया। बिल्टी भिजवा दी इलाहाबाद के एक एजेण्ट के पास और सोच विचारकर नम्र भाषा मे एक चिट्ठी दीनदयाल साहब को लिखवा दी। एक सप्ताह बीता और कोई जवाब नही। दूसरी चिट्ठी

लिखी गई, उसका भी कोई नतीजा न हुआ। बात बहुत साधारण थी, पर तबियत परेशान हो गई। मुफ्त म इस तरह पाँच पैसे की चपत भी क्सा दुख देती है, मुक्त-भोगियो का इसका अनुभव है।

फिर कोई आधा दजन चिट्ठियाँ गइ—उत्तरोत्तर सख्त और लानत म भरी हुई। पर किसी मे न कुछ होना था, न हुआ।

पाँच रुपये की बात किसी मित्र को भी तो नही लिखी जा सकती थी और भला कौन पाँच रुपय के लिए तक्लीफ उठाने को तैयार हाता ? बव कूफी ना सरासर अपनी ही थी।

आखिर मन म पेंच-ताव खाकर वह बात भुला देनी पडी और यह सोचकर सन्तोष किया, कि चला शिक्षा मिली। रकम बट्टे-खाते मे लिखवा दी गई।

बहुत दिन बाद एक बार इलाहाबाद जाने का मौका मिला। स्टेशन पर उतर तो उन पाँच रुपयो की भी याद आ गई। साचा, वक्त मिला ता उनकी भी खबर लेंग। अब न खेद बाकी रहा था, न क्षोभ। न मन म पेंच ताव खाता था न दाँत पीसता था। पिछली बवकूफी पर जो एक तरह का दलेप अपने प्रति अपने ही मन मे पैदा हो जाता है, वही इस समय था।

जिनके यहा ठहरा था, वे साहित्यिक आदमी थे। सुबह से शाम तक सकडों छायावादी और गल्पकार दिखाई द गए। वही सब लोगा म मरा भी परिचय हो गया।

शाम हा रही थी कि एक सज्जन न प्रवेश किया। सिर उठाकर देखा तो दीनदयाल! पतली धाती, रेशमी कुर्ता रेशमी दुपट्टा, सिर पर खद्दर की टोपी मुह म पान।

उसन जितने उत्साह स मेरा अभिवादन किया, उतनी ही रुखाइ से मैंन जवाब दिया। इस रुखाई पर दष्टिपात किय बिना ही हसते हुए उसने कहा—'कहिए प्रसन्न तो हैं ? मुझे तो वाजपेयीजी से खबर मिली। तुरन्त दौडा आया हूँ। आपसे मिलने की बडी ही लालसा थी।'

एक बार तो पाच रुपय की बात मुह पर लाने को हुआ, पर फिर एक संक्षिप्त-सा उत्तर देकर चुप रह गया।

उसने कहा—'अच्छा, अब आप मेरे साथ चलिए। कुछ नहीं सुनूगा

ापको मेरी महमानी कबूल करनी पडेगी। चलिए, एकदम खडे हो
ाइये।'

अब तो उसकी बात ने चौंका-सा दिया। जवाब भी अब सम्हलकर
े लगा।

धीरे धीरे रग चढने लगा और जिनके यहा ठहरा था, उनसे विदा
कर चल दिया।

पाँच रुपये की याद अब बार-बार आने लगी थी।

बाहर एक नई घोडा-गाडी थी। जाकर उसम बैठे। अभी मैं इसी
न्देह म पडा हुआ था कि गाडी का मालिक वही है, या कोई और, कि
सने खुद ही कहा—'कहिए, पसन्द आई आपको ? परसो ही ता खरीदी
। रुपया तो ज्यादा लग गया, पर चीज मन माफिक मिल गई।'

बात ज्यादा न हो पाई। मैं तो इस चक्कर मे पडा था कि यह कैसा
ोरख धन्धा है ! जिस आदमी के विषय म जाने क्या कुछ सोचा गया था
ौर दफ्तर के कमरे मे कमचारियो के आगे, वी० पी० वापस लौटने पर
जस जाने कितनी गालिया दी गई थी और दुनिया-भर के सबसे बडे
ण की उपाधि से विभूषित किया गया था, वह क्या घोडा गाडी पर
ढ़ता है ?

घर पहुँचे, तो आखें फट गइ। वह शानदार हवेली, कि जिसका
ाम ! दजना नौकर चाकर इधर उधर घूम रहे थे। हवेली का कुछ
हिस्सा किराए पर उठा हुआ था, बाकी मे आप रहते थे। बैठक तो इतने
अमीराना ढग से सजी हुई कि आखें चौंधिया गइ। सभी चीज स अमीरी
और शान टपक रही थी।

थोडी देर बाद अँगरखा-पगडी धारण किए हुए एक वद्ध पुरुष ने
कमरे मे प्रवेश किया। उन्होंने सहज भाव से मेरी ओर ताका। मुकुन्दलाल
ने उनसे कहा— मेरे एक मित्र हैं इलाहबाद सर के लिए आए हैं।
उनका परिचय मुझे उसने नही दिया और दो-चार मिनट बाद ही मुझे
लेकर वह कमरे से बाहर हो गया।

दूसरे कमरे म पहुँचकर उसने नौकर के हाथ खाना मँगवाया। मैं
बडा हैरान था, और आपने-आपको मन ही मन मे [illegible] रहा

लिखी गई, उसका भी कोई नतीजा न हुआ। बात बहुत साधारण थी, पर तबियत परेशान हो गई। मुफ्त म इस तरह पाँच पैसे की चपत भी कैसा दु ख देती है, मुक्त-भोगियो को इसका अनुभव है।

फिर कोई आधा दजन चिट्ठियाँ गइ—उत्तरोत्तर सख्त और लानत से भरी हुई। पर किसी से न कुछ होना था, न हुआ।

पाँच रुपये की बात किसी मित्र को भी तो नही लिखी जा सकती थी और भला कौन पाच रुपये के लिए तक्लीफ उठाने को तयार होता ? बव कूफी तो सरासर अपनी ही थी।

आखिर मन मे पेंच-ताव खाकर वह बात मुला देनी पडी और यह सोचकर सन्तोष किया, कि चलो शिक्षा मिली। रकम बट्टे-खाते म लिखवा दी गई।

बहुत दिन बाद एक बार इलाहाबाद जाने का मौका मिला। स्टेशन पर उतरे तो उन पाँच रुपयो की भी याद आ गई। सोचा, वक्त मिला तो उनकी भी खबर लेंगे। अब न खेद बाकी रहा था, न क्षोभ। न मन म पेंच ताव खाता था, न दाँत पीसता था। पिछली बेवकूफी पर जो एक तरह का श्लेप अपने प्रति अपने ही मन मे पैदा हो जाता है, वही इस समय था।

जिनके यहा ठहरा था, वे साहित्यिक आदमी थे। सुबह से शाम तक सैंकडा छायावादी और गल्पकार दिखाई दे गए। वही सब लोगा से मेरा भी परिचय हो गया।

शाम हो रही थी कि एक सज्जन ने प्रवेश किया। सिर उठाकर देखा तो दीनदयाल ! पतली धोती, रेशमी कुर्ता, रेशमी दुपट्टा, सिर पर खद्दर की टोपी मुह मे पान।

उसने जितने उत्साह से मेरा अभिवादन किया, उतनी ही रुखाई स मैंने जवाब दिया। इस रुखाई पर दृष्टिपात किये बिना ही हसते हँसते कहा— कहिए, प्रसन्न तो है ? मुझे तो वाजपेयीजी से खबर मिली। - तुरत दौडा आया हूँ। आपने मिलने की बडी ही लालसा थी।'

एक बार ता पाँच रुपये की बात मुह पर लाने को हुआ, पर फिर एक सक्षिप्त सा उत्तर देकर चुप रह गया।

उसने कहा—'अच्छा, अब आप मेरे साथ चलिए। कुछ नही सुनूगा,

आपको मेरी महमानी कबूल करनी पडेगी। चलिए, एकदम खडे हो जाइये।'

अब तो उसकी बात ने चौंका सा दिया। जवाब भी अब सम्हलकर देने लगा।

धीरे-धीरे रग चढने लगा और जिनके यहा ठहरा था, उनसे विदा लेकर चल दिया।

पाच रुपय की याद अब बार-बार आने लगी थी।

बाहर एक नई घोडा गाडी थी। जाकर उसमे बैठे। अभी मैं इसी सन्देह म पडा हुआ था कि गाडी का मालिक वही है, या कोई और, कि उसने खुद ही कहा— कहिए पसन्द आई आपको ? परसो ही तो खरीदी है। रुपया तो ज्यादा लग गया, पर चीज मन माफिक मिल गई।'

बात ज्यादा न हो पाई। मैं तो इस चक्कर मे पडा था कि यह कैसा गोरख धन्धा है ! जिस आदमी के विषय मे जाने क्या-कुछ साचा गया था और दफ्तर के कमरे मे कमचारियो के आगे, वी० पी० वापस लौटने पर जिसे जाने कितनी गालिया दी गई थी और दुनिया भर के सबसे बडे गण की उपाधि से विभूषित किया गया था, वह क्या घोडा गाडी पर चढता है ?

घर पहुँचे, तो आखें फट गई। वह शानदार हवेली, कि जिसका नाम ! दजना नौकर चाकर इधर-उधर घूम रहे थे। हवेली का कुछ हिस्सा किराए पर उठा हुआ था, बाकी मे आप रहते थे। बैठक तो इतने अमीराना ढग से सजी हुई कि आखें चौंधिया गईं। सभी चीज से अमीरी और शान टपक रही थी।

थोडी देर बाद अँगरखा-पगडी धारण किए हुए एक वृद्ध पुरुष ने कमरे मे प्रवेश किया। उन्होंने सहज भाव से मेरी ओर ताका। मुकुन्दलाल ने उनसे कहा—'मेरे एक मित्र हैं इलाहबाद सर के लिए आए हैं।' उनका परिचय मुझे उसने नही दिया, और दो-चार मिनट बाद ही मुझे लेकर वह कमरे से बाहर हो गया।

दूसरे कमरे म पहुँचकर उसने नौकर के हाथ खाना मँगवाया। मैं बडा हैरान था, और आपने-आपको मन ही मन मे धिक्कार रहा था।

क्यो उस पर ऐसा अनुचित सन्देह किया, और क्यो ऐसा निन्नीय पत्र-व्यवहार किया ?

इसके बाद उसने कहा—'आज थियेटर म चलेंगे, सीटें रिजव करा ली गई है।

मैंने खुश होकर कहा—'अच्छी बात है।'

मुझे कुछ काम था, इसलिए कुछ देर के लिए जाना चाहा। उसने रोका, पर मैं तुरन्त लौटने का वादा करके चला आया।

जिनके यहाँ ठहरा था, लौटकर वहाँ आया, ता देखा—वठे हुए व कई मित्रो के साथ बातें कर रहे हैं। देखते ही हँसकर बोल— कहिए, साहब, इनस कब की दोस्ती थी ?'

मैंने गौरव मे फूलकर कहा—'बहुत पुराने दोस्त हैं।'

एक नव परिचित छायावादी मित्र न कहा—'शुक्र है! एक तो मित्र मिला!'

मैंने चौंककर पूछा—'क्या ?'

'अरे साहब, इसका तो मित्र बनना भी नक मे जाना है!'

'क्यो ?'

तब उसकी जो कहायाँ सुनी, उसस दिल थर्रा गया। किस किस को कैसा-कसा धोखा दिया, वह सब सुनने के बाद मैंने भी अपनी पाच रुपये की बात कह दी।

इस पर सब खिलखिला पडे।

जब उस शानदार हवेली, और नई गाडी का जिक्र किया तब तो वह ठहाका पडा, कि मेरे होश उड गय।

उन्ही छायावादी महोदय ने सबको लक्ष्य करके कहा—'आजकल तो उस बुड्ढे मारवाडी पर जाल फेंक रहा है न! शायद गोद बैठना चाहता है!'

अजी बुड्ढे का मतलब है कुछ तुम नही जानते!

किसी कारण बात वही दब गई। जब फिर छिडी, ता प्रकरण बदल चुका था।

४

मित्र-मण्डली उठ गई तो मन सोच मे पड गया। दीनदयाल की बात यही रह गई थी। किस मारवाडी को किस फन्दे म फँसाया है, इसका खुलासा न हो सका। मन की उत्सुकता बुझकर रह गई।

मैंने सोचा—लोक-मत की कदर जरूर करनी चाहिए, पर उस पर सोलह-आने भरोसा कर लेना भूल है। सब आदमी शठ नही होते, जो होते हैं, वे भी हर किसी के साथ शठता नहीं करते। बाँबी मे घुसते वक्त साप को सीधा होना ही पडता है। माना, दीनदयाल मेरे साथ छल कर चुका है पर वह छल था, या क्या था—इसका निश्चय नही। उसका पीठ पीछा है, बात ईमानदारी की होनी चाहिए। अगर अब भी कुछ छल उसके मन मे होता, तो सबसे पहले पाँच रुपय की बात छेडता। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। यह तो मुमकिन नही कि उसे उन रुपयों की याद न हो पर मालूम ऐसा होता है, वह उसे अधिक महत्व नही देता। ढलती-फिरती छाया है, शायद तब पाच रुपये न दे सका हो, जवाब शम से न दिया हो। अब वक्त बदल गया हो। तक्दीर! शायद उस अहसान का बहुत बडा बदला देना चाहता हो। ऐसे आदमी अक्सर ऐसा करते सुने गये है।

सुनी हुई और बीती हुई घटनाओ को याद की तख्ती पर खोदने की कोशिश करने लगा।

मुमकिन है, सौ दो सौ किताबें खरीद ले। इधर अखबार निकालने का विचार है, शायद उसी का सरक्षक बन जाय! रुपया है! ऐस आदमी की दोस्ती ठुकरानी नही चाहिए। दुनिया की बात का इतबार नही। और फिर बुरा होगा अपने घर का, मेल-जोल म क्या हज है! अपना विगडता क्या है! कोई दूध पीते नहीं कि गले की हँसली उतर जाएगी। ऐसा कुछ पहलवान भी नही कि जबदस्ती कुछ करा ले! और जाना है थियेटर! अजी यहा अच्छे-अच्छा को चूना लगाया है, बच्चा अपना बिगाड क्या लेंगे चलेंगे।

सोचा चलेंगे, और चल दिए।

ड्योढी पर खडे मिले। देखते ही खिल गए। करीब-करीब छाती से

लगाकर बोले—'आखिर आ गए ! मैं तो खुद उधर जाने की सोच रहा था। गुस्ताखी माफ, आपने दिल्ली की नाक रख ली !'

'कैसे ?' पूछने पर उन्होंने कहा कि मेरी वादा-खिलाफी देखकर वे दिल्ली निवासियों के विषय में एक बुरी धारणा को मन में स्थान देनेवाले ही थे।

गाडी सामने खडी ही थी। दोनों बैठे। प्रमुत्व भरे भाव से दीनदयाल ने कहा, ' थियेटर !'

चाबुक की कोंपल पीठ से छूते ही घोडे हवा हो गए।

सहसा मुकुन्दलाल ने कहा—'यार, एक तकलीफ दूंगा।'

'तकलीफ' शब्द सुनते ही मेरे कान खडे हो गए। खडे होकर कानों में मानो कोई अप्रिय बात सुनने की तैयारी कर ली।

पर मालूम हुआ—बात बहुत साधारण थी।

उसने कहा—'मेरी 'वाइफ' थियेटर देखना चाहती है।'

मैं बोला—'तो दिखाते क्यों नहीं ?'

'पर मुझे शर्म लगती है। मैं उसे प्यार करता हूँ, पर यह शर्म उसके प्यार की खातिर नहीं करने देती। कम्बख्तनी की मार—जोश में आकर आज उससे दावा कर बैठा ! अब पछता रहा हूँ। थियेटर में कई बुजुर्ग लोग आयेंगे। भाई, मेरी रूह कांपती है। कुछ मदद करो दोस्त।'

'क्या मदद ?'

एक क्षण विलम्ब के बाद उसने कहा—'बुरा मान जाओगे।

नहीं।

'उसे कुछ देर के लिए अपनी बहन बना लो।

मैं बडा झेंपा, पर सम्हलकर बोला—'क्यों ?'

'बस कोई पूछे तो कहना, मेरी बहन माफ करना

मैंने क्षण-भर सोचकर कहा— बात कुछ समझ में नहीं आती।'

उसने चेहरा उतारकर कहा— खैर, जाने दो।

मुझे बडी शर्म लगी। बेचारे का दिल बुझा कर दिया। मेरा बिगडता क्या है ! आखिर दोस्ती करनी है तो उसका हक भी निभाना चाहिए। सिलसिला चलाने के ख्याल से बोला— लेकिन मुझसे पर्दा किया—तो ?'

'ओह !' उसने मेरे हाथ पर हाथ मारकर कहा—'यही तो फजीता है। पर्दा करती, तो मैं ही न ले जाता। कहती है, घर मे घुटकर जिन्दगी काटना मजूर, मगर बाहर निकलूगी तो 'लेडी' बनकर ! बडा ही जी जलता है ! क्या बताऊँ यार, बडी बेमेल जोडी मिली है। कोशिश की, मगर मेरे 'विउज' उससे न मिल सके। अच्छा, बोला फिर, आजकल वह अपने मामा के घर है। वह सामने रहा घर ! कहो, तो गाडी रुकवाऊँ।'

कहा गया, और गाडी रुकवाई गई।

घण्टे-भर बाद एक सुन्दरी ने गाडी मे कदम रखा। रेशमी साडी थी। गर्दन से नीचे तक एक कीमती शाल दोहरा करके ओढ रखा था। जूते, मोजे, जम्पर, जेवर— सब अपटु-डेट लेडी के अनुकूल थे।

उसने मुझे 'नमस्ते' किया, और दीनदयाल को बीच मे दकर सीट के परले किनारे पर बैठ गई।

५

थियेटर हाल मे ज्यादा आदमी नही थे। हम लोग आर्चेस्ट्रा मे जाकर बैठे। इस दर्जे म हमारे अतिरिक्त कई आदमी थे। जान पडता था— टिकट लेकर कोई नही आया, सब पर 'पास' थे। कोई अखबार का रिपोर्टर था, कोई नाटककार का मित्र था, कोई पुलीस-कर्मचारी था। यानी, उनका कुर्सियो पर अकड फलकर बैठना, रह-रहकर आगे-पीछे देखना, और बडे गर्व से साथियो के साथ बात करना—और किस सत्य को सिद्ध करता था सिवा इसके कि सब मुफ्तखोरे थे ?'

हम पहुँचे थे कि उन्ही मारवाडी सज्जन ने प्रवेश किया। दीनदयाल की देखा-देखी मैंने भी उन्हें अभिवादन किया। आकर वे मेरी बगल मे बठ गये।

उनकी फबन अजीब थी। रेशमी अचकन, पगडी, चूडीदार पाजामा, पम्प शू मूछो और बालो मे खिजाब लगा हुआ। बुढापे को धोखेबाज बनाकर जवानी की शक्ल मे पेश करने की कोशिश की गई थी।

बूढे ने आते ही मुझसे बातें शुरू की। दीनदयाल के और मेरे बीच की कुर्सी पर देवी विराजमान थी। बूढा मेरी बायी तरफ आकर बैठा। बूढे

को मुझसे बातें करते देख, देवी ने पल भर के लिए मुह फेर कर बूढ़े को प्रणाम किया, और सिर का पल्ला कोई आध इच आगे सरका लिया।

बूढ़े ने हँसकर कहा—'आप तो दीनदयाल के दोस्त हैं ?'

'जी हाँ।'

कुछ देर ठहरकर उन्होंने कहा—'डिरामा तो आज सुनते हैं अच्छा है, पर पब्लिक कुछ नही आई।'

मैंने रुखाई से कहा—'लोगो की रुचि है।'

फिर उसने कुछ विलम्ब के बाद कहा—'दीनदयाल आदमी तो अच्छा है।'

मैंने समझा— बूढा बहुत ओछा आदमी है। गम्भीर पुरुष इस तरह की बातें नही करते। टालने की गर्ज से बोला—'दुनिया मे सभी अच्छे हैं, और सभी बुरे हैं।'

दीनदयाल ने शायद अपना नाम सुन पाया था। बूढे के बराबर की कुर्सियाँ भी खाली थी। दीनदयाल उठकर उसके पास आ बैठा। अब मैं और बूढ़ा बीच मे और दोना सिरो पर दीनदयाल और वह देवी हो गई।

मेरी बात सुनकर बूढा दाँतो-तले जीभ दबाकर बोला—'थारा बेटा जीता रहे, साहेब, बात आपने एक लाख रुपए की कही है। दुनिया म आके कौन अच्छा रहे है ? यू तो साहेब, काजर की कोठरी है। या मैं चतर-सुजान भी रेख लगा जायँ हैं।'

दीनदयाल ने टोका— क्या मामला है ?'

मैं तो चुप रहा, पर सेठजी ने कहा—'इक बात थी। बाबू साहेब ने कही—दुनिया मे कोई अच्छा नही। मैंने कही दुनिया बडी बुरी है यामे कौन दूध धोया रह सके है। और भैया, सबसे पहले अपनाआपा बुरा है।'

बूढे की अनर्गल बातो ने अरुचि पैदा कर दी। यह भाव मेरे चेहरे पर प्रकट भी होने लगा, पर बूढा उस पर दृष्टिपात न कर सका।

बात का सिलसिला टूटे एकाध मिनट गुजरी, कि बूढे ने मेरे दायें बैठी हुई दीनदयाल की स्त्री को देखकर कहा— यू कौन हैं ?'

मैं बडा शर्माया। हद दरजे की अशिष्टता थी। पर जवाब न देना इससे

बाहर चला गया। मेरा शरीर काँप-सा गया। बगल में वह महिला बैठी हुई शौक से स्टेज पर दृष्टिपात कर रही थी। मैंने कनखियों से एक बार उसे देखा। फिर तुरन्त ही अपने को धिक्कारकर बैठ गया। इसे कोई मेरी कमजोरी कहे, कि औरत की खूबसूरती की मैंने मन-ही-मन तारीफ की।

थोड़ी देर बाद दीनदयाल और सेठ साहब लौट आए। मैंने दीनदयाल का चेहरा देखा। उसकी आँखें झिपझिपा रही थीं। माथे पर पसीने की बूंद थी। ऐसा लगता था, दिल में कुछ चीज दबाकर छिपाई हुई है, जो ऊपर निकल पड़ने के लिए जोर कर रही है।

दोनों आकर बैठे। अब की बार सीट बदल गई। दीनदयाल मेरे निकट था, सेठजी उससे परे। उन्होंने आगे झुककर दो-एक बार मुझसे बोलने की कोशिश की, पर फासला ज्यादा था, रह गए।

कुछ मिनट बीते। तब अकस्मात उन्होंने कहा—'डिरामे की जैसी तारीफ सुनी थी, वैसा नहीं है।

दीनदयाल ने कोई अनुकूल उत्तर दिया। मैं चुप रहा।

दो मिनट बाद ही सेठ जी ने फिर रिमार्क दिया—'यहाँ तो तबियत लगती नहीं, चलो, चलें, वहीं बैठेंगे।'

दीनदयाल ने टालने की कोशिश की, पर सेठ जी न माने।

हारकर हम सब उठे। नाटक या बुरा नहीं था, पर सेठजी के कहने पर सबकी तबियत उखड़ गई। लेकिन दीनदयाल का चेहरा कह रहा था, इस तरह जाना उसे सबसे ज्यादा नागवार गुजरा है।

वहीं दो घोड़ा की गाड़ी बाहर खड़ी थी। दीनदयाल सामने की सीट पर बैठ गया। गाड़ी थोड़ी दूर चली, कि दीनदयाल ने एक रेशमी थैली मुझे दे दी। मुझे कुछ बोलने का मौका न देकर उसने कहा—'इसे रख लीजिए।

मैं समझा नहीं फिर भी कुछ पूछने की जरूरत मैंने नहीं समझी। हाँ इस पर मेरा अचरज जरूर बढ़ा, जब दाईं तरफ बैठे हुए सेठजी ने कहा—जरा सम्हालकर रखियेगा।'

फिर भी कोई प्रश्न मैं न कर सका। साधारण भाव से कह दिया—'जी, कोई बात नहीं।'

मुझे याद पड़ता है, इसी बीच मे दीनदयाल ने कोई बात शुरू कर दी थी, और उसका सिलसिला तब तक खत्म न हुआ, जब तक कि गाडी ठहर न गई।

जहा ठहरी, वह एक गली थी। सामने ही एक मकान का दरवाजा था। दीनदयाल ने आगे बढकर दस्तक दी। दरवाजा खुल गया। तब उसने वहीं से कहा—'आ जाइये।'

सेठजी ने मेरा हाथ पकडा, और गाडी से नीचे उतरे। मैं क्षण-भर को ठिठका। पर सेठजी साथ थे, और मकान किसी भले आदमी का जान पडता था, इसलिए हिम्मत करके भीतर चला गया।

एक सजे-सजाये कमरे मे ले जाकर हम लोग बैठाए गए। सहन मे थम्भ गाडकर विवाह का सरजाम किया हुआ था। कमरे म तिलक-छापे लगाये हुए कुछ लोग बैठे थे। कोने मे एक मरियल सा नाई बैठा ऊँघ रहा था हमारी आहट सुनी, तो चैतन्य हो गया। पाथी पत्रा और दूसरे साज-सरजाम देखकर मैंने अनुमान लगाया, किसी शादी की तैयारी है।

दीनदयाल की स्त्री कमरे मे न गई। मैं और सेठजी तकियो के सहारे पास पास बैठ गए। दीनदयाल ने व्यस्ततापूर्वक हँसकर सेठजी स कहा—'आप बैठिए, मैं अभी आता हूँ। हाँ जी, पुरोहितजी, मुहूर्त कितने बजे का है ?

पुरोहितजी बोले—'बस साहब, लडकी को तैयार कीजिए। देर नही है।

दीनदयाल फुर्ती से चल दिया। मुझे कुछ कहने का मौका न मिला, मिलता भी, मगर सहसा सेठजी ने कोई बात शुरू कर दी।

अब तो वह दिल्लगी हुई, कि याद करते हुए हँसी आती है। दस मिनट, बीस मिनट आधा घण्टा, एक घण्टा एक घण्टा बीता, कि मुझसे ज्यादा सेठजी और सेठजी से ज्यादा मैं व्यग्र हो उठा। इस बीच मे कई बार उठकर बाहर जाने की मेरी इच्छा हुई थी, पर सेठजी हमेशा नई बात निकालकर बैठा लेते थे। दीवालघडी ने बताया, कि एक घण्टा बीता। बस, सब तरफ शोर मच गया। पुरोहित चिल्ला उठा—'लडकी को लाओ।' नाई चैतन्य होकर आँखें पोछने लगा। मैं ऊबकर खडा हुआ, कि

सेठजी ने हाथ पकड लिया। कहने लगे—'कहाँ चले ? बैठिए।'

उनका भाव देखकर मेरे होश गुम हो गए।

जो चालाकी उस शख्स ने खेली थी, उसे याद करके तबियत फडक उठती है। आप भी सुन लीजिए।

सेठ 'ओवर-एज' होने पर भी शादी के ख्वाहिशमन्द थे। शहर के सुधारक शादी होने न देते थे। दीनदयाल महाशय ने उन पर डोरे डाले। दिल्ली मे किसी लडकी की कल्पना की गई। सेठ साहब से कहा—'फलाँ दिन लडकी का भाई उसे लेकर इलाहाबाद आयेगा, उसी दिन शादी कर दी जायगी।' 3000 रुपये पर सौदा तय हुआ। पर सेठ बगर लडकी पसन्द किए कौडी देना नही चाहता था। दीनदयाल लडकी का थियटर ले गया। यह लडकी, थी मेरठ की एक वेश्या। दीनदयाल से इसकी पुरानी आशनाई थी। दोनो ने मिलकर सेठ को उल्लू बनाया। मुझ गरीब से जिस तरह काम लिया वह सबके सामने है। तीन हजार के नोट उस रेशमी थली मे दीनदयाल को दे दिए गए थे। गाडी मे थली मुझे दे दी गई सेठ निश्चिन्त थे, माल मेरे पास है। पर माल-वाल क्या—रद्दी कागज के टुकडे भरे हुए थे, माल पहुँचा दीनदयाल की जेब मे। न 'लडकी' का पता था, न दीनदयाल का। यह मकान तो किराये का था ही, पुरोहित, नाई, नौकर चाकर सब किराये के। सुधारको के डर से सेठ साहब खुद चाहते थे शादी चुपचाप हो जाय।

आखिर सब सिर पटकते रह गए किसी को धेला न मिला। एक बात कह देनी चाहिए। वह रेशमी थली जब खोली गई, तो रद्दी कागजो के बीच म से पाच रुपये का एक नोट निकल आया, जिसे सेठजी ने तुरन्त झपट लिया। उन्हे आशा हुई—शायद सौ का हो, या शायद और कुछ निकले।

पर और कुछ न निकलना था न निकला।

सुननेवाले कहते हैं—वह नोट गलती से रह गया, लेकिन मेरा खयाल है कि मरा कर्ज चुकाने की कोशिश की गई थी।

रखैल

१

नन्दू एक ऐसा आदमी था, जिसे कुछ लोग बीस बरस की उमर मे ही 'फिलॉस्फर' कहने लगे थे। बाप जब तक जिए, उनमे उसकी बनी नही, दोनो के दिमाग सदा भिन्न-भिन्न दिशा मे चलते रहे। शिक्षा उसकी सिर्फ मैट्रिक तक थी, मगर विचार बडे ऊँचे, गहरे और बडे मौलिक! दुनिया को सुख रखने का सबसे सहज तरीका क्या है?—किसी के सुख [illegible] की चिन्ता न करना! बडा आदमी कौन है?—जो किसी की [illegible] नहीं मानता। सबसे बडी बेवकूफी क्या है?—अपनी [illegible] बहाना। सबसे बडा सुख क्या है?—दोनो वक्त रोटी मिल जाना!

ऐसे ही उसके सिद्धान्त थे। और भी बहुत-सी बातें थी। [illegible] कहनेवाले कुछ लोगों की बात कह ही चुके हैं, [illegible] सनकी, पागल और शेखचिल्ली का खिताब दिया [illegible]।

आखिर इस सीधे-सादे प्राणी ने जीवन [illegible] अब तक उसने कुछ न किया?—[illegible] बूढ़े बाप को सुख ही दिया। [illegible] उसके हाथ से छूटी नही, और [illegible] साथ ही वृद्ध ने प्राण त्याग [illegible]।

नही कह सकता कि [illegible] हीन था। और [illegible] सागर की सम्पत्ति। [illegible]

अब [illegible]

और जो उसकी फिलॉस्फी के मद्दाह थे, वे भी। शोक करनेवाले दरअसल बधाई देने आये थे। सभी सबसे पहले और सबसे आगे अपना चेहरा रखना चाहते थे। सभी के ओठो मे हँसी फूटी पड़ती थी। सभी की आँखों मे बधाई का गुलाल भरा हुआ था।

पर नन्दू इससे खुश न हुआ। दुनिया की मनोवृत्ति पर उसे दुःख हुआ कोई उसका आँसू पोंछनेवाला न था। कोई उसके दिल की असलियत न जानता था। उसके विषाद पर किसी को ध्यान देने की फुरसत न थी। लोगो की सहानुभूति के शब्द उसके कान म गोलियो की बौछार-से लगने लगे। सब उसे कपटी, छली, धूर्त समझ रहे हैं!

तब, पिता की मृत्यु के कुछ ही समय बाद वह बाहर निकल पड़ा।

२

लौट-आकर नन्दू ने अनुभव किया, कि अब उसका छुटबछेरा बनकर फिरना समाज सहन न कर सकेगा। ब्याह करने की जरूरत दरअसल अभी तक उसने महसूस नहीं की थी। यदि यह कहें, कि उसका जीवन रसिकता से एकदम शून्य था—तो या तो अन्याय होगा, या अतिशयोक्ति। तबियत उसकी रंगीलेपन से खाली नही थी। मगर आदमी के कन्धे पर किसी विरोधी लिङ्ग के प्राणी का बोझा अनिवार्य है—यह बात उसकी समझ मे न आती थी। न उसकी खुली प्रकृति यह गवारा करती थी कि विवाह के खूटे मे बँधकर वह अपनी स्वाधीनता म बाल बराबर फर्क डाले।

अस्तु, रिश्ते आते गए और टलते गए।

मगर बीस लाख बहुत बड़ी चीज है। मित्र कैसे इतने सारे हो गए, और किस तरह ऐसे-वैसे लोगो से उसका दिल मिल गया—यह समस्या उसकी समझ म खाक न आई। फिर—किस आसानी से सिगरेट का धुआँ उसकी आँखो के सुरूर तक और सिनेमा थिएटर पुतलीबाई के मुजरे तरफ घसीट ले गए इसका क्रमबद्ध इतिहास भी कोई नही बता सकता। लोगो के प्रति दृष्टिकोण म भी अब अन्तर आ गया। जिनकी इज्जत थी, उनकी खिल्ली उड़ने लगी, जिनसे प्रेम था, उनकी उपेक्षा होने लगी, जिन पर

श्रद्धा थी, उनसे आखें चुराई जाने लगी ।

और वह गरीब जब एकात म सोचा करता कि यह सब प्रलय हो क्यो कर गई, तो उसकी समझ मे खाक न आता था—न आता था ।

विचारधारा भी उसकी बदल ही गई थी। पुतलीबाई के डेरे पर, या जाम आठ से छुआकर, अथवा मुसाहबो की मण्डली मे उसके मुह से अक्सर निकलता था, उन्हे बुरा कहनेवाले लोग नालायक हैं ! वह अब भी वसा ही सच्चा, वसा ही सच्चरित्र, वैसा ही रहमदिल और वैसा ही सहृदय है। वह ढागी नही है, वह धूत नही है, वह किसी की बहू-बेटी को बलपूवक नही उठवा मँगाता, वह किसी गरीब का गला काटकर पैसा नही बटोरता !—उसकी इस महानता की समानता ससार मे बिरले ही करते हैं।

समथको का कमी न थी !

३

वह आदमी के जीवन म अक्सर ऐसी स्थिति आती है, जब वह बदी के साथ भी दुराचार करन को तैयार हो जाता है। ऐसे कुछ बदो का परिचय आपको भी होगा, जो सव-सम्पन्न होकर भी अत्यन्त कुपात्र को सवस्व सौंपे हुए हैं,—जो एक अति तुच्छ पुछली को हृदय-मदिर की देवी बनाए हुए हैं—जो समस्त ज्ञात पापो का परिचय प्राप्त कर लेने के बाद कल्पनातीत पापो की ओर दौडते हैं।

नन्दू ठीक उस स्थिति पर पहुँचा, या नही, इसे खोलकर कहने की जरूरत नहीं। पर पुतलीबाई और उसकी बिरादरी अब उसे खीच रखने मे अक्षम रहने लगी—शराब के पैग म सादे पानी के गिलास से अधिक महत्व न रह गया—मुसाहबो की मनोरञ्जन वार्ता मे खटास पैदा हो गया।

तब नन्दू ने बार-बार गुमाश्तो के सिर छोडकर भ्रमण का निश्चय किया, और इस भ्रमण म हर समय और हर जगह रोमास' करने की भी उगन ठान ली। यह रोमान्स उपन्यास का रोमास नही, कहानी का रोमान्स था।- पाया, चक्खा, और फेंक दिया।

दो सूट-केस, एक हैण्ड-बैग, एक वायोलिन, बिस्तर छडी, छत्तरी और पहनने के कपडे। हाथ मे चमकती हुई अँगूठी, जेब मे बेशकीमती घडी, छडी मे सोने की मूठ और बक्स और सूटकेस मे चाँदी का लाटा गिलास रेशमी कपडो के कई जोडे एक कीमती दूरबीन और बहुत-सी ऐसी कीमती और सूफ़यानी चीजें—जो न हो, तो अमीरा की अमीरी को प्रकट हाने म दिक्कत पडे।

फस्ट-क्लास के एक डिब्बे मे नन्दू न तन-तनहा यात्रा आरम्भ की। लोगा न जब कहा—'नौकर लेते जाओ,' ता लापरवाही स जवाब मिला—'यात्रा का मजा जिसे चौथाई करना हो, वह साथ नौकर रक्खे।

इस पर किसी ने दबी आवाज से कह दिया—'फिलास्फी का प्रकाप अभी तक चले आता है।

मगर नन्दू की ट्रेन उधर सीटी देकर चल पडी थी।

और रोमान्स शुरू होने का समय भी आ ही पहुँचा।

४

घूमते फिरत मथुरा आए।

इससे पहले बहुत-सी जगह् गए। रामान्स भी सभी जगह हुआ।—बिलकुल कहानी का रोमान्स! सभी जगह् का रोमन्स अलग-अलग तरह का था, पर सबका अन्त होता था—एक रात का मिलन, और कुछ नाटो का खर्च! रोमन्स नन्दू की दनिक क्रिया बन गया, जिसका अगला परिच्छेद शुरू होते ही पिछले की याद रखना व्यथ समझा जाता था।

खैर, मथुरा पहुँचे।

इस जमाने मे हिन्दू-तीर्थों पर पुण्य-सचय कितना होता है यह कहना शक्य नही, बहरहाल पाप झल्लिया म भर भरकर बखेरा जाता है और असख्य नर-नारी भिन्न भिन्न प्रकार से तीथ-स्थानो पर मनचीत करक आते हैं। किसी के बरसो के वचन पूण होत है कोई जीवन के आनन्द का अनुभव करता है, कही जी भरकर जी की हौस निकाली जाती है।

ठीक जन्माष्टी का दिन था। इस दिन मथुरा के अनन्त यौवन का विकास होता है। मथुरा और वृन्दावन के बीच चौबीस घण्टे इक्के, तागे,

माटर, बग्घी और पैदल जनता की आवाजाही लगी रहती है।

इसी सडक पर नन्द कुछ साथियो के साथ ताँगे मे वृन्दावन जा रहा था।

इन साथियो की एक कहानी थी। उसके होटल मे ऐन सामने का कमरा किसी मगनयनी के कब्जे मे था। नजर मिलते-ही नन्दू का रोमैन्स शुरू हो गया। झटपट सामान कमरे मे रखकर नन्दू नित्य-कम से निश्चिन्त हुआ। इस मगनयनी के साथ एक मरियल युवक था, जिसके कपडे-लत्ते साफ, मगर चेहरा बदरग था। आसार से वह स्त्री का पति जान पडता था, पर पति के अधिकार, दप या दबगपन का कही लेश भी न था।

नन्दू जब कपडे पहनकर तैयार हुआ, तो सामने वाले दोनो कही जाने की तैयारी कर रहे थे। नन्दू ने केश साफ किये, और आवाज दी—'ऐ बाबू साहब!'

बाबू साहब लपककर आय, और हीरे की अँगूठी पहने हुए, सान की घडी लगाए हुए, भडकीले रेशमी कपडो मे आच्छादित गौर वण नन्दू के सम्मुख रोब मे आ गए। गिडगिडाकर पूछा—

'जी क्या हुक्म है?'

नन्दू के आख की कोर बीच का फासला लाघकर मगनयनी से कला-बाजिया खा रही थी। बाल सँवारते सँवारते कहा—'दियासलाई की डिबिया चाहिए।'

'जी, अभी लाया।'

कहकर वह पत्नी के प्रति—'अरे ओ!' पुकारता हुआ लौट पडा।

नन्दू ने एक आह खीची। कैसा पति और कसी स्त्री! निश्चय ही पति है।

दियासलाई की डिबिया ला दी गई। नन्दू ने एक रुपया उसके हाथ पर धर दिया, और कहा—'होटल के नौकर को बुलाकर एक सिगरेट का बक्स ।'

उसने तत्परता से उत्तर दिया—'जी, मैं ही लाता हूँ।'

कहकर रुपया लिए हुए वह नीचे उतर गया।

अब मृगनयनी का अपरा नयना के तीर चलाने की स्वाधीनता थी

नन्दू ने बाल सँवारे, पोमेड लगाई, इत्र बसाया और कपड़ों की शिकन दूर की। पर इतनी देर में जी उसका घायल हो चुका था।

इतनी देर बाद सिगरेट का वक्त आया। इसी मृगनयनी का चुम्बक वृन्दावन की सड़क पर ताँगे में उसे घसीट रहा था।

५

आखिर वृन्दावन की सैर हुई, तरह-तरह के सामान खरीदे गए, अमीरी का प्रदर्शन हुआ। नन्दू ने उदारता की हद कर दी।

हीरे की अँगूठी, सुनहरी घड़ी, सोने की मूठ की छड़ी, सभी एक-एक करके खोल-खोलकर प्रदर्शित कर दी गई।

इतनी देर में नन्दू सारी असलियत जान गया। पुरुष का नाम था रामप्रसाद और स्त्री का चमेली। बचपन में विधवा हो गई, और दो बरस से रामप्रसाद के साथ है। रामप्रसाद पहले रेलवे में मुलाजिम था, और अब कई महीने से बेकार है।

नन्दू की लार टपक पड़ी। पर सम्भलकर बोला—'भाई, तुम बहादुर हो। तुमने एक बाल विधवा का उद्धार करके आदर्श युवक का काम किया। मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ। आज से तुम मेरे भाई हो। मैं तुम्हारी मदद करूँगा।'

रामप्रसाद ने गद्‌गद् होकर कहा—'बाबू साहब, चार महीने से नौकरी की तलाश में मारा-मारा फिर रहा हूँ। जो कुछ जमा जथा थी, खत्म हो गई, अब पन्द्रह दिन से होटल के मालिक की दया पर टुकड़े खा रहा हूँ। यहाँ से छूटना दुश्वार है। जाना चाहता हूँ तो होटल का मालिक किराया माँगता है। कहा से दूँ ? अजब फंद में जान फँसी है।

क्षण-भर के लिए नन्दू का सिर झुक गया। कैसा दयनीय प्राणी है !

रामप्रसाद ने उसी सुर में फिर कहा—'अकेला होता तो भीख माँग लाता, अब वैसा भी नहीं कर सकता। दुनिया में कोई हमदर्द नहीं मिलता, मिलता भी है—तो ऊल-जलूल खयाल लेकर !

नन्दू की नजर चमेली पर पड़ गई। वह कातर नेत्रों से उसे ताक रही थी।

नन्दू क्षण भर को सिहर उठा।

फिर बोला—'धीरज रखो भाई, अब समझ लो—तुम्हारे मुसीबत के दिन कट गये। चाहो तो मरे साथ चल सकते हो। निहाल कर दूगा। मेरे यहा सत्तर आदमी काम करते हैं। तुम भी वहा खप सकोगे। काम मेहनत से करोगे तो उन्नति होगी।'

रामप्रसाद की आखा मे आसू भर आये। नन्दू ने फिर उसे आश्वासन दिया, पर चमेली को उसने जिस भाव से ताका, उसे हमी समझ सकते हैं।

कैसा गहरा छल!

६

नन्दू की यात्रा का प्रोग्राम अभी पूरा न हुआ था, इसलिए दोनो प्राणियो को साथ लिए वह भरतपुर, ग्वालियर और फतहपुर-सीकरी होता हुआ आगरा आया।

इस अर्से म सब लोग मिलकर घी खिचडी हो गये थे। नन्दू के गौर वर्ण, स्वस्थ शरीर और अगाध औदाय पर चमेली हजार जान से मर मिटी थी। रामप्रसाद उसका अदब करता था, और उससे दबता भी था। सच बात यह है कि न चमेली के प्रति उसका स्त्री-भाव रह गया था, न चमेली ही उसे पति मानती थी। नन्दू ने उसे बहुत-से कीमती कपडे खरीद दिए थे, और उन्ह पहनकर चमेली सदा नन्दू के साथ रहना पसन्द करती थी।

आगरा पहुँचते पहुँचते चमेली के धीरज का बाध टूट पडने को हुआ। आखिर उसने दिल की बात नन्दू से साफ-साफ कह दी। नन्दू सुनकर हँस पडा, और होटल के एकान्त कमरे मे उसने चमेली को बाहुओ मे कसकर चूम लिया।

चमेली बिल्ली की तरह नन्दू की छाती से चिपट गई, और फिर आँखें नीची करके उसकी हीरे की अँगूठी, साने की घडी मूठदार छडी से खेलने लगी।

नन्दू ने मुस्कराकर कहा—'पानी!'

चमली ने बक्स खोलकर चादी का लोटा गिलास निकाला, और पानी

लाकर दिया। नन्दू ने एक हाथ से गिलास और दूसरे से उसका हाथ थाम-कर पूछा—'एक बात बताओगी ?'

चमेली ने आँखें चलाकर कहा—'हाँ।

'तुम मुझे प्यार करती हो ?'

'हाँ।'

'सच ?

हाँ।'

'कितना !

इतना। कहकर चमेली ने जल भरा लोटा उसके आगे कर दिया।

नन्दू हँस पड़ा। गिलास उसने मेज पर रख दिया, और चमेली को छाती से लगा लिया।

कहा—'तुम्हें सदा अपने पास रखूँगा।—भला ?'

'मगर वह कहाँ जायगा ?' रामप्रसाद की तरफ संकेत था।

वह भी रहेगा।

कहाँ ?

हमारे कारखाने में नौकरी करेगा।

फिर मुझे कैसे रखोगे ?'

'क्या ?' कहते कहते नन्दू का चेहरा फक पड़ गया।

'क्या—रखैल ?'

इसके बाद रामप्रसाद के आने से बात वहीं की वहीं रह गई। पर दोनों के दिल चुटीले हो चुके थे। नन्दू बरामदे में टहलने लगा। चमेली पलंग पर पड़ गई।

कहना न होगा, कि इन दोनों के एकान्त मिलन में रामप्रसाद को कोई आपत्ति न थी।

आगरे की सैर दिन भर हुई। इतने समय में पिछली घटना करीब करीब भूल चुकी थी। नन्दू की उदारता फिर जारी हो गई थी, चमेली ठठा-ठठाकर फिर बलैया लेने लगी थी, नैनों के तीर और हँसी दिल्लगी का फौवारा फिर शुरू हो गया था।

चालीस रुपये की वह साड़ी उस दिन चमेली के शरीर पर ऐसी फबी

कि नन्दू को अब धीरज धरना कठिन हो गया। रामप्रसाद की अनुपस्थिति के लिए, उसका संकेत काफी था। उस दिन वह सिनेमा देखने चला गया। उस सुनसान होटल के कमरे मे या तो रेशमी कुर्ता-वास्कट पहने नन्दू खड़ा था, अथवा उसी चालीस रुपए की साड़ी मे अँगड़ाई लेती हुई चमेली।

नन्दू ने उसका हाथ पकड़कर खीचा। चमेली ने सिसकारी लेकर कहा—'उई! अँगूठी चुभ गई!'

नन्दू बोला—'इसे तुम्ही रक्खो।'—कहकर उसने अँगूठी उतारकर उसकी उँगली मे पहना दी।

चमेली को तब उसने हृदय से मिला लिया। वह बोली, 'उफ्! अब घड़ी चुभ गई!'

चन और घड़ी उसने मेज पर रख दी, और कहा— यह भी तुम्हारी हुई।'

तब उसने खीचकर उसे पलग पर बैठा लिया। पलग हिला तो सिर-हाने मे लगाकर खड़ी हुई, सोने की मूठ की छड़ी गिर पड़ी। मूठ चमेली के पैर पर लगी, और वह 'आह' कर उठी।

नन्दू छड़ी उठाकर बाहर चला। चमेली ने आँखो मे शराब भरकर पूछा— कहा चले!'

'इसे फेंकने।'

'क्यो?'

'इसने तुम्हें कष्ट जो दिया।'

चमेली ने अट्टहास करके कहा—'फेंको मत—रख दो, मैं उसे मना लूगी।'

'तो इसे भी तुम्हें दिया।' कहकर नन्दू ने छड़ी मेज पर रख दी।

चमेली ने सोना बाहू फैलाकर नन्दू की छाती मे सिर छिपा लिया।

नन्दू ने जीभ की नोक से चमेली का कपोल-स्पर्श किया, और कहा—'एक बात बताओगी?

चमेली ने तकिये मे मुँह छिपाकर कहा—'क्या?'

'सच बताओगी?'

'क्या ?'

'झूठ मत बोलना।'

'नहीं।'

नन्दू ने कान पर ओठ धरकर कोई बात कह दी।

चमेली लाज से सिमट गई। बन्धन शिथिल हो गया।

'बोलो!'

'क्या बोलूं ?

'फिर कहूँ ?'

'कहो।'

तब नन्दू ने एक-एक अक्षर पर जोर देकर कहा—कि त ना र स मि ला ?'

बन्धन और शिथिल हो गया। जवाब अब भी कुछ न मिला।

नन्दू ने कहा— बोलो! जवाब क्यों नहीं देती!'

पर जवाब में एक लम्बी साँस की आवाज सुनाई दी।

नन्दू पलग पर उठकर बैठ गया। चमेली का चेहरा अब भी तकिए में छिपा था। नन्दू ने उसे पलट दिया। देखा—चमेली की आँखें आसुओं से भरी हैं।

'क्यों ?'

चमेली आँसू पोछकर हँस पड़ी, और बोली—'क्या पूछा ?'

नन्दू ने फिर अपना प्रश्न दोहरा दिया।

चमेली उदास हो गई, कहने लगी—'क्या बताऊँ ?'

'कुछ तो!'

'अरे बाबू साहब हमारा क्या रस ?'

नन्दू ने चौंककर कहा—'क्या मतलब ?'

चमेली के चुम्बन सिक्त ओठों पर शुष्कता सी दौड़ गई। बोली—'रखल—और रस ?'

नन्दू की साँस रुक गई, और वह धीरे-धीरे पलग से उठ पड़ा।

घण्टे भर बाद ही एक ट्रेन जाने वाली थी। टाइम से दस मिनट पहले

नन्दू भीतर आया, और कोट पहनकर कहने लगा—'मैं जाता हूँ।'

'कहाँ ?'

'कहीं भी।'

'और मैं ?'

'यहीं रहो।

'और सामान ?

'छोड़ जा रहा हूँ।'

'किसके लिए ?

'तुम्हें दिया।

'सच ?—और यह घड़ा ?'

'तुम्हारी हो चुकी।'

'क्या सच ?—और यह अगूठा—यह छड़ा—यह सोग-[illegible] ?'

'सब तुम्हारा हो गया।

स्टेशन होटल के पास ही था, इसलिए गाड़ी की सीटा [illegible] कानों तक पहुँच सकती थी।

सुधार की खोज

१

सुधाकर ने एम० ए० पास किया है और एक नया खब्त उस पर सवार हो गया है।

अपनी माँ का एकलौता बेटा है, खूब दौलत है और बड़े लाडो से पला है। भावुक है, गम्भीर है, और कहें तो कह सकते हैं कि—बिगडने के बजाय सुधर गया है।

पास होते ही ब्याह की बात उठी, लडकी भी स्थिर हो गई। पर, देख आने को कहा गया, तो पत्थर की मूर्ति की तरह अचल खडा रह गया, और कुछ न बोलकर चुपचाप बाहर चल दिया।

पिता का देहान्त हो चुका है। रिश्ते के एक ताऊ उसके अभिभावक हैं। वे ताऊ न होकर उसके मित्र से है, और सुधाकर अपनी सब बातें निश्शक उन्हें बता देता है।

जब माँ के लडकी पसन्द कर आने के प्रस्ताव पर अनेक बार चुप्पी साधी, तब माँ ने उन्ही ताऊजी की शरण ली। ताऊजी ने शाम को छेड दिया वही जिक्र। बोले—'लडकी तो अच्छी है सुधाकर, जाकर एक बार देख आओ न।'

ताऊजी ने कहा—क्यो ?'

सुधाकर ने नेत्र झुकाकर साफ शब्दो मे कहा—साहब, मैं तो कोई क्रान्तिकारी विवाह करूँगा।'

'क्रान्तिकारी विवाह ?' ताऊजी मुह फलाकर रह गए।

अब सुधाकर कुछ आवेश मे आकर बोला—'देखिए, आज हमारा समाज कैसा पतित हो रहा है। असख्य हानहार लडकियाँ गरीबी के कारण कुपात्रो को सौंप दी जाती हैं। और फिर उनकी दुदशा का ठिकाना नही रहता। किसी का पति शराबी है, किसी का गँजेडी, किसी का बुड्ढा!'

ताऊजी ने कहा—'बडे शुभ विचार हैं। तो क्या किसी गरीब की लडकी की तलाश की जाय?'

'न!'

फिर?'

हाँ तो, देखिए न, ऐसी लडकिया इन नीच पापिष्ठ पतियो के चगुल मे जीते-जी नरक-यातना का अनुभव करती है, और पडोसी गुण्डो और नीच युवको द्वारा बहकाई जाकर अन्त मे पतन और दुराचार क गहर गड्ढे मे गिरती हैं। अन्त मे अधिकाश ऊबकर वेश्या हो जाती है।'

ताऊजी ने मुस्कराकर कहा—'खूब! 'सेवा-सदन' पढा है क्या?'

सुधाकर ने सिर झुकाकर स्वीकार किया—जी हाँ पढा ता है। पढा क्या है, मनन किया है, और क्रियात्मक '

'अब ताऊजी ने एक-बारगी उछलकर कहा—'अरे, क्या क्या '

सुधाकर ने खिसियाकर कहा—'जी हाँ, चौक क्यो पडे? मैं तो ऐसा ही क्रान्तिकारी विवाह करना चाहता हूँ।'

'सच? देखो धोखा खाओगे।'

'क्यो? धोखा क्यो? मै विश्वासपूवक कहता हूँ कि हर एक वेश्या विवाह करके 'एक' की होकर रहने को उत्सुक है।'

'पर देखा ना! सेवा सदन' की-सी तो सब जगह नही मिल सकती।'

'जी हाँ, वैसी न मिलने पर भी काम चल जाएगा।'

हू कहकर ताऊजी विचार म पड गये।

सुधाकर ने आप-ही-आप कह दिया—'और यदि ऐसा सम्भव न हुआ तो मैं ब्याह ही न करूँगा।'

ताऊजी बडबड़ा उठे—'परिस्थिति! समाज!!'

सुधाकर बोला—'समाज की मैं परवा नही करता। मेरा अन्त करण

शुद्ध है। मुझे किसी की चिन्ता नही है।'

कहते-कहते आवेश आर उत्साह से उसका कण्ठ कुछ गद्‌गद हो गया।

कई मिनट तक दोना चुप बठे रहे, फिर सहसा ताऊजी बाल उठे—'तो तुम वेश्या से विवाह करोगे ?'

सुधाकर ने कुछ सहमकर कहा—'जी हाँ, किसी समाज तिरस्कृता से।'

'जो विवाह की इच्छुक हो।'

'जी हाँ, जो परिस्थितिया से मजबूर हाकर वेश्या बन गई हो, और जा सच्चे हृदय से गहस्थी बनन को उत्सुक हो।

ताऊजी ने स्थिर नेत्रा से उसे ताकते हुए कहा—'तो करोगे ही ?'

'जी हाँ, करूँगा—आर भारत के युवको के लिए एक नया रास्ता खोल दूगा।'

ताऊजी फिर विचार मे डूब गए। कई मिनटा के बाद सहसा उनके ओठो पर हँसी की लहर दौड गई। बोले—तो जनाब का 'कोट-शिप' कसे होगा ?'

सुधाकर का मुह लाल हो गया। बोला—'आप मेरा परिहास करते है।'

ताऊजी ने कहा—'न भाई। क्यो बुड्ढे आदमी पर नाराज होते हो ? मैं पूछता हूँ, आखिर मन-माफिक पात्री की खोज कसे लगाओगे ?'

क्या यह भी परिहास है, यह देखने को सुधाकर क्षण-भर को रुका, फिर बोला—'मैं दस-बीस वेश्याओ की पूव-कथायें सुनूगा, और उनमे से एक को चुन लूँगा।'

जब सुधाकर चला गया तब ताऊजी दौडे-दौडे माँ के पास पहुँचे और बोले—'लडकी हाथ से न जाने पाये। ब्याह जल्दी ही होगा।'

२

आज सुधाकर की पहली मुहिम है। आज रात को नौ बजे के बाद वह बाजार की तरफ जायेगा।

ज्यो ज्यो समय बीता, उसके शान्त हृदय-तल मे हिलोरें-सी उठने लगी। दिन-भर शहर मे घूमता रहा। कभी इस मित्र के यहां गया, कभी उस सम्बन्धी के। पर ठहरा कही पाच मिनट से ज्यादा नही। मुह उसका विकृत हो रहा था और चेष्टा विकार-युक्त। बातें भी उखडी-पुखडी सी थी। जिससे मिला, उसी ने आज इस परिवतन पर लक्ष्य किया।

ठीक तीन बजे घर आ पहुँचा। सीधा अपने कमरे मे घुस गया, और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। तब चारपाई पर दो-जानू बैठकर वह हाथ जोडकर ईश्वर से प्रायना करने लगा। ठीक शब्द तो हम याद नही, हाँ, इतना बता सकते हैं कि वह साहस का सन्चय कर रहा था। तब उसने जोर-जोर से धडकते हुए दिल को हाथ से दबाया।

चार बजे, और फिर पाँच। भोजन का बुलावा आया, तब बिना दूसर की नौबत आए सुधाकर खाने पहुँच गया, और झटपट निबटकर फिर कमरे मे आ बैठा। दिल धडकना बन्द हुआ, तब उसने पोशाकें पसन्द करनी शुरू की। सादी-से-सादी, स्वच्छ-से-स्वच्छ होनी चाहिए।

आखिर को एक खद्दर का जोडा पसन्द आया। गाँधी-कप, नीची अचकन और चूडीदार पायजामा। गले मे खद्दर की एक हल्की चादर डाल ली।

अब घर मे बैठना दूभर हो गया। कमरा बन्द कर, चोरो की तरह बाहर निकल गया।

रात के नौ का घण्टा सुनाई देने तक, और माली के दरवाजा बन्द कर देने की सूचना देने तक सुधाकर शहर से बाहर एक बाग मे बठा रहा, और तब निकलकर धीरे-धीरे बाजार की तरफ चला।

दिल का धडकना फिर शुरू हो गया था।

किसी तरह खाँस-खूसकर, दाब-दूबकर सुधाकर न दिल की धडकन कम की, और गम्भीर मुह बनाकर बाजार मे इधर-उधर घूमने लगा।

एक पर नजर जमी। खासी सुन्दर—चिकना, गहुँआ रग, नक्श अच्छे उम्र कोई सत्रह साल और चेहरे पर भोलापन बरसता था। सुधाकर ने सोचा—यह जरूर कोई समाज-तिरस्कृता दुखिया है। आज पास चलेंगे।

मन शुद्ध था, उद्देश्य पवित्र था, वेग आदरणीय था, फिर भी न-जाने क्या सुधाकर का दिल काँप रहा था ? क्या सकोच ने पल्ला पकड़ा था ?

पर आँख मीचकर वह जीने पर चढ ही तो गया !

३

एक दिन ताऊजी ने सुधाकर को बुलाया और पूछा—'कहो भाई, 'सेवा-सदन' को क्रियात्मक '

सुधाकर ने लजाकर सिर झुका लिया, और कहा—'आप तो ताऊजी व्यग्य करते हैं। आप जानते हैं कि मैंने सदभावना से प्रेरित होकर ही ऐसा निश्चय किया है। आपको मुझे प्रोत्साहन '

परिस्थिति समझकर ताऊजी हठात गम्भीर हो गये और बोले—'न सुधाकर, ऐसा न समझो। मैं विनोद प्रिय व्यक्ति हूँ, इसी कारण इस प्रकार कहा। बुरा न मानना। सचमुच तुम्हारा यह निश्चय धन्य है ! पर भाई, तुमने बिना सोचे-समझे एक बहुत दुरुह काम का बीड़ा उठा लिया है। अगर तुम अपने इरादे म कामयाब हो जाओ तो मुझसे बढकर आनन्दित कोई न होगा।'

सुधाकर न प्रसन्न होकर सिर झुका लिया।

ताऊजी ने कहा—'हाँ, कहो तो। गए थे किसी के पास ?'

सुधाकर ने सिर ऊपर न उठाकर कहा—'जी हाँ। तीन-चार जगह जा चुका हूँ।

ताऊजी ने उत्सुक बनकर पूछा—'क्या हुआ ?'

एक ने तो कहा, मेरी माँ वेश्या थी मैं भी वही पेशा करती हूँ। ब्याह की बात सुनकर चुप हो गई। मैं चला आया।

'और ?'

एक शायद ब्याह करने को राजी हो भी जाती, पर उसकी माँ ने बीच मे पडकर गडबड कर दिया, बल्कि उसने मुझे कुछ सख्त-सुस्त भी कह डाला। कहने लगी दस हजार तो मुझे दो और इसे पाच सौ रुपया महीना हाथ-खर्च को देना होगा। आदि-आदि।'

'अच्छा। और ?'

'एक ने मेरी बडी अभ्यर्थना का बडे उत्साह से बातचीत की, पर ब्याह की बात उठी तब खिलखिलाकर हँस पडी और बोली—'अरे बाबू साहब, दिमाग खराब हो गया है क्या ?' हारकर वहाँ से भी लौटना पडा ।'

'बस ?'

'जी नही, एक के यहा और गया था ।'

फिर ?'

जी, क्या बताऊँ । वह तो मुझसे लडने और बहस करने को तैयार हो गई । कहने लगी— आप लोग क्यो हमसे जलते है ? क्या हमारी मिट्टी खराब करते है ? इत्यादि-इत्यादि ।'

बस ?'

'बस ।

'अब कहो मेरी बात सच हुई न ।'

सुधाकर ने जल्दी से कहा— तो अभी प्रयत्न ही कितना हुआ है ?'

ताऊजी ने मन-ही मन कहा, 'पागल लडका ।' फिर मुह से बोले— 'तो अभी और प्रयत्न करना बाकी है ?

फिर परिहास का आभास पाकर सुधाकर खीझ उठा और बोला— जी हाँ है तो कहिए ?'

ताऊजी ने सँभलकर कहा—'न भाई, नाराज न होओ, मैं पूछता हूँ, अब क्या विचार है, किसके पास जाओगे ?'

'आज एक के पास और ।'

फिर ?'

'फिर ? फिर देखा जायगा ।'

'हूँ । आज माँ से कुछ कहा-सुनी हो गई थी न ?'

जी हाँ ।

क्या ?'

'जी वही पुरानी बात । लडकी को देख आ लडकी को देख आ,' दिमाग परेशान कर डाला ।'

तो लडकी का देख क्यो नही आते ?'

'जी ? उससे क्या लाभ ? मुझे तो उससे ब्याह करना नही है।'

'फिर भी देख तो आओ, उनके भी मन की हो जाय। आकर कह देना, पसन्द नही आई।'

'जिस गाँव जाना नही है, उसके कोस गिनने से लाभ ?'

'कोस गिनने से लाभ होगा भाई। इस बुड्ढे की इतनी बात मान जाओ।'

यह कहते-कहते ताऊजी ने गिड़गिड़ाकर उसकी ठोडी पर हाथ लगा दिया।

'अरे ! जी, अच्छा कल, आज और हो आऊँ।'

'अच्छा, किसके यहा जाओगे ?'

सुधाकर ने वेश्या का नाम-पता बता दिया। उसके सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुना था। आज उसकी परीक्षा करेगा।

सुधाकर चला गया, तब ताऊजी भागे-भागे पुराने दोस्त बुड्ढे करीमखा के पास पहुँचे और घण्टा-भर तक गुप चुप उससे परामश करते रहे। न मालूम क्या बातें हुई, पर जब ताऊजी उठने लगे तब 'खच-खर्च के लिए' पचास रुपये के नोट करीमखाँ के 'न, न !' करने पर भी उन्होंने दे दिए थे।

४

नौ बज चुके थे और सुन्दरबाई के कोठे पर बाईजी थी, और एक मुसलमान था। मुसलमान के तन पर अतलस की अचकन थी, चूडीदार पायजामा और गुलाबी मोजे थे। सिर पर खुशनुमा सदई रग का रेशमी साफा बँधा हुआ था।

आँखो मे सुरमा, बालो मे खुशबूदार तेल, मुह मे पान, और मोछें मोम लगाकर कानो पर गोल मोडी गई थी।

पहचानिए, ताऊजी का दोस्त निराली सज धज म मौजूद था।

बहुत देर से बातें हो रही थी। दोनो एक निश्चय पर पहुँच चुके थे। दोनो की नजर रह रहकर बाजार की तरफ जा रुकती थी।

हठात् करीमखा चौंक पडा, और सामने पटरी पर घूमते हुए एक

युवक की तरफ सकेत किया। बोला—'लो, अब आने ही वाले हैं। मुझे तो किसी और जगह बठा दो।

'क्यो ?'

वाह ! मेरे तो मालिक ठहरे ! मुझे पहचान न लेंगे ?'

'ठीक है, यह कोठरी।'

करीमखाँ ने कहा— ठीक है। देखो, बडा गहरा माल है। जिस तरह समझाया है, ठीक उसी तरह।

सुन्दर ने मुस्कुराकर कहा— अच्छा ! अब रटा रहे हो।'

करीमखाँ भी वदले मे कत्था-सने दाँत निकालकर कोठरी म घुस गया।

पाँच-सात मिनट मे बीतते-न-बीतते सुधाकर ऊपर आ पहुँचा।

सुन्दर हँसकर खडी हो गई और साडी का पल्ला सरकाते हुए हाथ जोडकर बोली— आइए नमस्ते।

सुधाकर झिझककर एक बार पीछे हट गया। वाह ! बिलकुल नया सम्बोधन !

पाँच-छ बार जाने से सुधाकर की हिचक बहुत-कुछ दूर हो गई थी। सीधे जाकर गद्दी पर वठ गया और नेत्र झुकाकर बोला—'बैठो देवि !

सुदर ने चौंकने का प्रदशन करते हुए कहा—'जी ? क्या कहा ?'

सुधाकर मुस्कराकर बाला—'बैठो देवि, बठो।

चकित, स्तम्भित सुदरबाई धीरे धीरे बैठ गई, और प्रत्येक भाव-भङ्गी स शुद्ध पवित्रता प्रकट करती हुई बोली— आप कौन हैं महोदय ? कैसे पधारने की कृपा की ?

सुधाकर ने कहा— मैं एक अनाखा प्रस्ताव लकर तुम्ह कष्ट देने आया हूँ।'

जी, आज्ञा कीजिए।

देवि, मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या तुम सदा स वेश्या ही हा ?'

सुन्दर का मुह अकस्मात सफेद हो गया, और मुह स एक लम्बी और ठण्डी सास निकल गई।

सुधाकर ने उत्साहित होकर कहा—'क्या क्या मरी बात से कुछ

[illegible]

महसा सुन्दर ने रोनी होकर कहा—'महोदय, अब क्या कष्ट होना बाकी रह गया है ? ओफ परमात्मा !'

सुधाकर ने कहा—'अधीर न हो ! बताओ तो। अपनी पूर्व कथा मुझे सुनाओ।'

सुन्दर ने हद कर दी ! आँखों से आँसू निकलने लगे, और मुँह से रह-रहकर ठण्डी साँसें !

वाह ! यह तो सुधाकर के मन की बात होती जा रही है ! क्या आखिर परिश्रम सफल होगा ?

बोला— तो सुनाओ भी ?'

तब सुन्दर ने रोते, कलपते, आँसू पोंछते, आह भरते-अपनी राम-कहानी सुनाई।

ब्राह्मण की लडकी है। बचपन में बाप मर गया विधवा माता रह गई उसने रुपए की तङ्गी और रिश्तेदारों के दबाव से मजबूर होकर उसे कुपात्र को ब्याह दिया।

जिससे ब्याह हुआ, उसकी उम्र चालीस साल की थी। तीसरा ब्याह था। अफीम, चरस और शराब के व्यसन ने उसे जिन्दा दरगोर कर रक्खा था, और प्रकृति उसकी राक्षस की तरह कठोर बन गई थी। जो कुछ कमाता, बदमाशी में उड़ा देता। वह तीन-तीन दिन तक भूखी प्यासी तड़पती रहती।

सुधाकर साँस रोककर आगे झुककर ध्यान से सुन रहा था। वाह ईश्वर ! आखिर जिन ढूढा, तिन पाइया।'

एक दिन दिन-पीछे कुछ मुसलमान गुण्डे घर में आ घुसे और उसे पकड कर ले चले। उसके मुँह में कपडा ठूँस दिया गया। रास्ते में किसी तरह कपडा निकालकर वह चिल्लाई। शहर का कोतवाल वहीं घूम रहा था। उसने बदमाशों को मार भगाया और उसे अपने साथ कोतवाली ले गया। वहाँ रात को उससे अनुचित प्रस्ताव किया गया। उसने कौशल से काम लिया और झाँसा पट्टी देकर दो-तीन दिन बची रही। फिर एक दिन सिपाही की मदद से भाग निकली। उस सिपाही के फन्दे से छूटकर एक

बड़े-भारी नेता के घर में रसोई बनाने पर नौकर हो गई। उनकी नीयत खराब देखकर वहा से भी भागना पड़ा, और अन्त में विवश होकर वेश्या बन गई। अब केवल गा-बजाकर पैसा कमाती है।

सुधाकर द्रवित होकर रोने लगा। फिर आँसू पोछकर गद-गद कण्ठ से बोला—'तुम्हें इस व्यवसाय से घृणा नहीं होती ?'

सुन्दर ने सिसकते हुए कहा— हाँ ! मैं ही जानती हूँ। मेरे मन में भयानक कष्ट की ज्वाला धधक रही है। हाय ! मैं कहीं की न रही !! न जाने मुझे क्या दण्ड मिलेगा !'

सुधाकर ने कहा—'तुम्हें अपने स्वामी की खबर मिली है ?'

सुन्दर ने झिझककर कहा 'वह मर गया—मुझे पता लग चुका है—एक दिन शराब खाने में।'

तब सुधाकर ने क्रमश: ब्याह का प्रस्ताव किया।

कुछ बातें हुई, कुछ वाद हुए, कुछ बात हुई, और प्रस्ताव स्वीकार हो गया।

सुधाकर उठा, तब सौ रुपए का नोट सुन्दर की हथेली पर रख दिया, और कहा— अब किसी को न आने देना। तब तक इससे खर्च चलाओ।'

यह क्या ? यह क्या ? दस बीस दिन गुजारा तो ।'

'न, न रक्खो !'

नोट रख लिया गया, और सुधाकर चल पड़ा।

करीमखाँ का कड़ा निषेध था कि खड़ी होकर विदा न करे, बैठी रहे। बिना इस निषेध का रहस्य समझे ही सुन्दर को रह जाना पड़ा था। वह न उठी, और बैठे-बैठे ही सुधाकर को विदा किया।

५

जीने की दूसरी सीढ़ी पर पैर रक्खा ही था कि भीतर कोई जोर से बोल उठा—'वाह बी सुन्दर ! कमाल किया।'

सुन्दर ने जल्दी से कहा—'अरे चुप ! चुप ! सुन लेगा।'

सुधाकर ठिठक गया।

फिर आवाज आई—'वाह या वाह ! क्या काठ का उल्लू फाँसा है। ठीक किया, शाबाश !'

गुन्नू बराबर 'चुप चुप' कर रही थी।

वह आवाज बिना रुके सुनाई दे रही थी—'बड़ी मोटी चिड़िया है सुन्दर, साला के वारे-न्यारे हैं ? क्या ट गया ? अच्छा ! सौ रुपए ? ला, पचास चुपके से इधर दे दे।'

इस बार गुन्नू ने उत्तेजित होकर कहा—'चुप रहो ! चुप रहो ! लो, पचास नहीं सौ ला, मगर चुप रहो।'

सुधाकर ने झाँककर देखा कि एक मुसलमान ने सौ रुपए का नोट अपनी की जेब में रख लिया।

आँखों आगे अँधेरा छा गया। किसी तरह गिरता पड़ता सुधाकर नीचे पहुँचा।

माँ ने जो लड़की पसन्द की थी, उससे सुधाकर का ब्याह हो गया। ताऊजी ने सौ रुपए का एक सुरक्षित नोट बहू को मुँह दिखाई में दिया।

निग्रह

१

रामदेव ने इक्कीसवें वप मे पैर रक्खा है, और बी० ए० पास किया है।

और मा के, बुआ के, दादी के धैय का बाध भी जैसे एक बारगी टूट पडा है। बाबूजी भी अब कुछ सतक हो पडे हैं। यहा तक कि रेलवे के वयोवृद्ध रिटायड क्लक, पडोसी, लाला रङ्गीलाल भी जो सदा रामदेव को अविवाहित रहने की प्रेरणा दिया करते थे, अब प्रतिकूल परामश देने के लिए अवसर ढूढने लगे हैं पर इस रामदव पर कैसा भूत सवार हुआ कि ब्याह की बात सुनकर ही जल उठता है और बडो पर आँखें काढकर, छोटो पर डाँटकर, बीच वालो पर तक ठानकर, ब्याह के प्रति अपनी भयानक उपेक्षा प्रकट करता है।

और मा, बुआ दादी किसी सुदरी, गोरी सुकुमारी का जिक्र चलाती हैं, तो थाली छोडकर खडा हा जाता है।

बाबूजी समझदार हैं, वह उससे कम बातें करत हैं, इसी से वह भी उनका मान करता है। और ब्याह के सम्बध म अनगल बात चलाकर वे भी उस सुरक्षित और बचे हुए मान की तलछट को नष्ट करना नही चाहते हैं।

रामदव अब रङ्गीलाल के पास फटकता नही। उनसे वह डरता भी है, और उनकी बात मानने से सहसा इकरार कर देना भी उसे मजूर नही है।

बाबूजी ने हठात् एक दिन रंगीलाल से जिक्र छेड दिया, और दोनो बुड्ढो ने मिलकर एक उपाय स्थिर कर डाला।

२

खाना खाकर उस दिन रंगीलाल बाजार न गए और रामदेव दिखाई दिया तो अपने स्वभाव के विरुद्ध आवाज देकर उसे अपने पास बुला लिया।

अब इतनी अवहेलना तो अशिष्टता, विवशता और अहंकार तक पहुँच जाती है। रामदेव आया।

'कहो भाई, एम० ए० में दाखिल होगे ?' रंगीलाल ने हुक्के की नाल हाठो पर रखकर हँसते हुए कहा।

रंगीलाल ने उस सम्बन्ध मे बात न चलाई, तो अब उसे चलानी चाहिए। बोला—'जी हा, मेरा तो इरादा है।'

तुम्हारा इरादा है, तो बाधा क्या ?'

पिता जी

'हा ।

माताजी

हा ।

और सब लोग '

'हा, क्या है ?'

'यही सब लोग तग करते हैं—ब्याह कर लो, ब्याह कर लो। मेरे विचार तो आप जानते है।'

'क्या अब तक उन विचारो पर दृढ हो ?

'जी हाँ!'—अब रामदेव की आँखें उत्साह से चमक उठी—'मुझे भी क्या आपने ऐसे वैसो मे समझ लिया है ? मैं विवाह करके कदापि बन्धन मे न पड़ूगा, कदापि देश-सेवा के पथ मे काटे न बिछाऊँगा, कदापि गुलाम सतान पैदा कर पृथ्वी का बोझा न बढाऊँगा।'

लाला रंगीलाल ने कहा— शाबाश ! शाबाश ! आज तुमने मेरी तबियत खुश की है! वाकई तुम्हारे जैसे युवक ही दुनियाँ मे कुछ कर सकते हैं।

रामदेव यहाँ से चला, तो आनन्द और गर्व से उछला पडता था।

३

वह लाला की लडकी सबको पसन्द आई है। नवीं तक पढी है, परी-सी सुन्दर है, मक्खन सी कोमल है, और लक्ष्मी-सी सुशील है और फिर सब के बाद लडकी के माँ बाप कैसे शरीफ है! बेचारे सिर पटक रहे है! एक ही लडकी है—चाहे सर्वस्व ले लो। लडके पर लट्टू हैं। वह चाहे लडकी देख ले, बात कर ले, जाँच ले, समझ ले, ठोक ले, बजा ले। मा, दादी, बुआ, बाबूजी—सब लडकी को देख चुके है और पसन्द कर चुके हैं।

अब, सब, दम-साधे रामदेव का खब्त उतरने की बाट देख रहे है और उतारने के उपाय भी चुपके-चुपके सोच रहे है! इस लडकी का जिक्र बेटे के आगे चलाने का बीडा मा, बुआ, दादी कोई न उठा सकी।

इन्ही दिनों दो बुड्ढों का परामर्श एक निश्चय पर पहुँचा था।

उस निश्चय के षडयन्त्र को सफल बनाने की तैयारियाँ सरगर्मी से होने लगी हैं।

४

वह दूर के रिश्ते मे कोई मौसी-औसी लगती हैं। वह आज एक सप्ताह से आई हुई है। बेचारी गरीब है! साथ मे सामान वामान कुछ नही था। दो एक दिन पहले से चर्चा चली थी, और फिर वे एक दिन गाडी मे बैठी खुद ही आ मौजूद हुईं। कपडा की एक पोटली और एक पन्द्रह-सोलह साल की लडकी उनके साथ थी।

पहले तो कभी इस मौसी को रामदेव ने देखा नहीं है, न उसके विषय मे कुछ सुना ही है। होगी कोई! अभी तक उसे घरू-मामला मे कुछ जानने पूछने का मौका ही कहा मिला है! अब तक तो वह किताबें, टेनिस, क्लब और सिनेमा को लेकर ही पागल बना रहा है।

पर यह लडकी

यह लडकी तो उसे कुछ परिचित-सी, कुछ प्रिय-सी लगती है, कुछ

आकर्षण करती है और इस [illegible]की को देखकर तो वह कुछ लजाता भी है।

पर लजाए [illegible] कमजोरी जाहिर होती है और बात करे, तो सिद्धात टूटन का डर [illegible] यह भी नही, तो हास्यास्पद बनने की आशका !

यह सब सोचकर उसने अपना सारा समय बाहर-बाहर बिताना आरम्भ कर दिया है।

अब, मित्रा के पास जी नही लगता, टेनिस खेलना रुचता नही, किताबें बन्द और कॉलिज खत्म हो हुए सिनमा रात की चीज है, इसलिए पार्क म कुञ्ज मे, दरिया किनारे या ऐतिहासिक खडहरा म दिन-दिन भर बिता देता है।

सिद्धात भग के भय ने बेचारे को अकस्मात कितना भावुक बना दिया है !

५

आज फिर रगीलाल ने बुला ही लिया। जब पूछा, कहाँ रहते हो ? घर से क्या इतना वैराग्य हो गया ? तो एकदम आत्मसमपण क भाव से सिर झुकाकर बोल उठा—'साहब, आज एक बात साफ-साफ आपसे कहता हूँ। बुरा न मानियेगा और मुझ पापिष्ठ को लज्जित भी न कीजिएगा।

जब रगीलाल न स्वीकार किया, तो बोला—'मैं 'ब्याह की समस्या पर इन दिना गभीरतापूवक विचार करता हूँ '

फिर ठहरकर और देखिए चाहे आप मुझे मन-ही-मन भयानक पापी कहे—मैं इस परिणाम पर पहुँचा, कि मुझे विवाह कर लेना चाहिए। अब आप चाहे तो मुझे गालियाँ दे लें।'

वाह ! इसम गालियो की क्या बात ! यह तो स्वाभाविक बात है। आखिर बीस-बाईस वप के हुए मॉं बाप की अकेली सतान !—यह याद क्यो न करा ? वाह भई वाह ! ब्याह ता करना ही होगा।

इस गिरगिट की तरह रग बदलने को हम तो देख सकते हैं, रामदेव को देखने की इच्छा आशा या फुरसत कहाँ ? जल्दी से बोला—'जी हाँ,

मैंने सोचा सबसे पहले तो सारे कुटुम्बी-जनो का दिल दुखाना ठीक नही, फिर सारा ससार मेरी जान बवाल मे डाले हुए है—ब्याह करो ! ब्याह करो ! एक आपकी बात छोड दी जाय '

रगीलाल ने कहा, 'और ज्यो-ज्यो उम्र बढेगी, यह बवाल बढेगा ही ।'

'जी हाँ, बढेगा ही ।' रामदेव ने कहा—'रहा सवाल देश-सेवा का, सो असल मे तो सतान इसमे बाधक होती है, पत्नी नही । पत्नी तो बाधक क्या—पति चाहे तो सहायक बन सकती है । ठीक है न ? और सतान तो *अपने हाथ की बात है ! सयम तो पुरुष का पहला गुण होना चाहिए ! और* मेरा तो पच्चीस वर्ष तक का प्रण है । चार वर्ष तो '

रगीलाल ने मुह फेरकर चिलम फूकते हुए कहा—'सब ठीक है, तुम ब्याह करो जी, मिठाई खाये बहुत दिन हो गए !'

फिर बात न जमी, और रामदेव जब बाहर आया तो पाँच मिनट तक दीवार से कान लगाये खडा रहा । रगीलाल हँस तो नही रहे हैं !!

बुआ ने—जिसका व्यवहार भाभी का-सा है—हँसकर बता दिया है कि मौसी के साथ आई हुई लडकी उसकी स्त्री बननी सभव हो सकती है ।

अगले दिन कई महत्वपूर्ण घटनाएँ हो गईं । मौसी और लडकी चली गई, पिता ने साफ-साफ, खुलकर, कुछ बातें की और रामदेव ने सिर *झुकाकर आत्म-समर्पण कर दिया !*

६

ब्याह हो गया है और सयम और प्रतिज्ञा की धज्जियाँ भी उड गई हैं । हाँ, सिद्धान्त रक्षा की धुन, या जली रस्सी की ऐंठन अभी बाकी है । सन्तान-उत्पत्ति के विरुद्ध अभी है, पर अन्तर इतना है कि पहले जीवन भर निस्सन्तान रहना अभीष्ट था, अब चार-पाँच वर्ष की परिधि

सन्तान निग्रह का महत्त्व खुद खूब समझ लिया है और नई पत्नी को गम्भीरतापूर्वक समझाया जा रहा है । 'मेरी स्टोप्स' की सब पुस्तकें पढ चुका है और समझ चुका है, 'मौल्थीजियनप्यूरी' का तीव्र भक्त बन गया है और 'सन्तान निग्रह' या 'बर्थकण्ट्रोल' के समस्त उचितानुचित उपायो का उपयोग करना शुरू कर दिया है ।

साथियो मे खूब डीग हाँकी जाती है, ब्रह्मचर्य, सयम और सन्तान-

निग्रह पर सक्षिप्त और अधिकारहीन उपदेश दिए जाते हैं और क्षीणकाय, दुबल और दब्बू विवाहित साथियो की खिल्ली भी उडाई जाती है।

पर, जो गुणी हैं, अनुभवी हैं, समझदार हैं, वे उस उतरे हुए मद को देखते हैं और हँसते हैं।

लाला रगीलाल भी देखते हैं, पर हँसते नही।

पर, अरे! यह क्या हो गया! महीना बीत गया, एक सप्ताह, दो सप्ताह, धीरे धीरे तीसरा भी बीतने लगा! रामदेव महीने का ठीक-ठीक हिसाब रखता है, यह क्या हो गया! सारे उपचार सारी सतकता, सारी एहतियात व्यथ सिद्ध हुई! छ महीने भी नही हुए।

व्याकुल हो गया। स्टोप्स की पुस्तकें छान डाली डाक्टरी, वद्यक के कई ग्रन्थ उलट-पलट दिए और नुस्खे छाँट लिए।

तब, एक दिन, जबदस्ती दवा पिला दी।

७

पाच वष बीत चुके हैं। देश-सेवा तो कुछ हुई-हवाई नही पड गए बिजिनेस के, या रोटी के या पेट के चक्कर मे! हा इतना जरूर हुआ कि सन्तान अभी तक हुई नही है। वाह! कैसा लाजवाब नुस्खा था! एक ही खुराक मे झगडा साफ!

पर, रामदेव यह नही कहता वह तो उस खुराक को कोसता है, उन किताबो को जला देने की इच्छा करता है और मेरी स्टोप्स और मौलथ्युजि साहब के बाल पकडकर गोली मार देने का सकल्प करता है और न जाने क्या-क्या करता है!

किसी ने कह दिया है कि बाईस-तेईस वष तक स्त्री को बच्चा न हो, तो फिर होना असम्भव है! बस, अब जी जान से जुटा है। बस एक! एक लडका हो जाय, या ज्यादा-से-ज्यादा एक लडकी! और इससे अधिक की जरूरत नही! यह भी न हुआ, तो बात क्या रही! ब्याह किया है, तो सन्तान के लिए। हा, अन्धाधुन्धी बुरी है!

पर इन तर्कों का तो अब समय नही। अब तो वष के भीतर-भीतर किसी तरह बाप बनना है। चाहे जैसे हो, चाहे जितना रुपया खच हो जाय

चाहे जितना परिश्रम करना पड़े।

और देश-सेवा ? ठहरो जी, वह इस समय कहने की बात नही है। अब तो दो साल के भीतर भीतर जल्दी-से जल्दी बाप बनना है और वश को निर्मूल होने से बचाना है।

दाई, मेम, डॉक्टर, वद्य, हकीमो की चिकित्सा तो दो वर्षों से क्रमश होती आई है। अब नम्बर लगा है नजूमी—सयाने और आसेब झाडने वाले औलिया और फकीरो का।

दादी मरने से पहले परपोता देखने को तडप रही है, माँ के पेट मे पोते की चिन्ता से अन्न नही पचता, विधवा बुआ बेचारी के पैरो म भागते-भागते छाले पड गए हैं।

और खुद नायक-नायिका के चित्त मे, जो अपने मनोभावो की झलक एक-दूसरे तक भी पहुँचाने म सकुचाते हैं कसी अद्‌भुत धुकधुकी उठ रही है ?

रामदेव अब भरकम हो गए हैं, जिम्मेदारी समझने लगे हैं, दूसरे के बच्चे को प्यार करने और निधडक 'बेटा !' कहने के अभ्यस्त हो गए है।

और अपनी उस—हाँ उस !—उच्छ खलता और जल्दबाजी पर न-जाने कितनी वार अपने-आपको कोसे दे चुके है।

८

वह वडे पहुँचे हुए महात्मा है। उम्र उनकी डेढ सौ वष से कम नही है लेकिन देखने म युवक से लगते है। पूरे सौ वष से हिमालय म तप रहे थे और स्वय शिवजी के एक अमर गण उनके गुरु है। केवल कुछ दिनो के लिए भू-लोक मे विचरण करने उतरे हैं। वह भी तब, जब कि स्वय गुरुजी ने आज्ञा दी। उन्हें अपूव सिद्धि प्राप्त है। मरे को जिलाने का तो ईश्वर की ओर से निषेध है बाकी सब काम करना उनके लिए पलभर का काम है। जो लाचार है, दुखी हैं, परेशान हैं केवल उन्ही की सहायता वे करते है।

एक महीने से यहाँ हैं। न जाने कितनो का उद्धार किया है। बडे आदमियो से बात नही करते, पैसे की तरफ आख नही उठाते। जो गरीब है, उसके लिए उनके कपाट खुले हैं। अ तर्यामी हैं। जिसने धन माँगा,

धन दिया, जिसने रोजगार माँगा, उसे रोजगार और जिसने सतान माँगी, उसे सन्तान भी मिल गई।

मन्तान   क्या कहना है, उन महात्माजी का!

रामदेव, यही तुम्हारे सच्चे सहायक हैं। उनका यश तो तुमने सुना ही है। क्यों नही किस्मत आजमाई करते? योग और सिद्धि आखिर कोई चीज हैं! इस भारत-भूमि पर ही तो इनका जन्म हुआ। क्या जाने, इस कलिकाल म भी किसी को भूलोकवासियो पर दया आ गई हो।

उनकी कीर्ति सभी सुन चुके हैं, लेकिन रामदेव से कौन कह? क्या वह रात-भर बहू को छोडेगा? दादी, बुआ, माँ, बहू और खुद रामदेव मन ही मन इस सवाल का जवाब ढूढने में व्यस्त हैं।

आखिर बहूजी एक दिन हिम्मत कर गई। रामदेव ने पहले तो झिडक दिया, फिर टाला लेकिन अब तो न-जाने कसे माँ, बुआ, दादी, सभी को हठ करने की हिम्मत हो गई। क्या रामदेव इस सयुक्त आक्रमण को सहन कर सकते थे?

थे तो कोई सिद्ध ही पुरुष, क्योंकि ठीक नौ महीने बाद रामदव के घर पुत्र-जन्म हो गया। बडी खुशियाँ मनाई गई।

अब सब कोई सुखी है और सब कुछ ठीक है सिर्फ लाला रगीलाल ने उनके घर का पानी पीना छोड दिया है।

अन्धी दुनिया

१

आज फिर लडाई ? नकुन बुरे दिखायी देते है। काशीनाथ ठिठक गया। बीरा की माँ, मक्खन की भाभी श्रीराम की बहू खिडकिया खोले खडी थी। बिस्सो जग्गी, रमेश और परसादी धूल म सने, हाथा म खेल की चीजें लिए लिए, थोडी देर को खेल बन्द कर, खेल से अधिक मनारजक घटना का अवलाकन कर रहे थे !

काशीनाथ भय, क्षोभ, आशका और अपमान से दग्ध होता हुआ, घर के सामने जा खडा हुआ। लडके भाग गए बीरो की माँ ने पल्ला नीचाकर लिया, मक्खन की भाभी ने खिडकी बन्द कर ली, श्रीराम की बहू लम्बा घूघट काढकर पीछे हट गई।

जसे हठात पट-परिवतन हो गया !

भीतर घर मे माँ के कर्कश कठ का घार निनाद गूज रहा था। 'हाय ! इस डायन ने मेरा सत्यानाश कर दिया ! लौडा मेरा अलग हाथ म निकल गया, ब्याह किया, तो घर का सब-कुछ उसमे स्वाहा हो गया ! अब यह हरामजादी डायन मुझे जला जलाकर क्यो मार डालना चाहती है। अरे, इस तरह जला-जलाकर क्यो मारती है एक दिन खसम स सखिया मँगाकर खिला क्यो नही देती ? झगडा साफ हो जाय तेरी जान का वबाल कटे।'

चिर-अभ्यस्त 'हाय ! हाय !' और धमाधम छाती पीटने की ध्वनि ! साथ ही कोमल कण्ठ से निकली हुई अव्यक्त रुदन ध्वनि और मूक-व्यथा!

स्तब्ध हो, काशीनाथ गली के फर्श पर नजर गाडकर खडा रह गया। जिस भयानक ज्वाला से उसका वक्षस्थल धक-धक कर रहा था, उसे कौन जाने ?

अब कर क्या ?

वहाँ खडे-खडे उसने रौद्र-रस का एक चटखारा और लिया, और पत्थर को तोडनेवाले माँ के भयानक वाक्य-बाणो को अधूरा ही सुन, धीरे-धीरे वापस चल दिया।

हाय ! लाडा मे पली, एक वर्ष की ब्याही उस सुकुमारी की क्या दशा होगी !

२

जब तक ब्याह न हुआ था, मा के पेट मे पानी न पचता था। जरा बुखार आता तो गिडगिडाकर हाथ जोडती, और कहती—'अरे मेरे लाल! मैं तो सूखा पेड हूँ, अब चली, तब चली ! देख, मैं तो मर ही जाऊँगी, पर तू तुझे रोटी के भी लाले पड जायँगे। देख, मान जा, हाथ जोडती हूँ, ब्याह कर ले। लाला रामप्रसाद की लडकी पढी-लिखी है परी-सी सुन्दर है देख ले, समझ ले। देख, मेरे जीते जी !' इत्यादि। कही जाना होता, तो कहती—'देख, कैसी तकलीफ है। बहू घर मे हो, तो एक जनी बैठी तो नजर पडे ! मान जा, समझ जा !' कभी किसी की बहू को देखती, किसी बच्चे को देखती, तो बेटे के आगे, आँखो मे आँसू भर लाती, और ठण्डी साँस लेकर कहती— हाय बेटा ! क्या मुझसे ऐसी दुश्मनी है ! क्या मेरे दिल की दिल मे हा रहेगी ?' बहुधा यह भी कहती— मेरी उमर तो बेटा, अब इस काबिल नही है कि मैं घर के धधो मे वक्त बिताऊँ। मेरा यह समय तो रामनाम जपने, धर्म-ध्यान करने, और दर्शन मेले म बीतना चाहिए। मेरे बेटा, जल्दी स तेरा ब्याह हो जाय, तो मैं इस जजाल से छुट्टी लूँ।'

काशीनाथ पच्चीस वर्ष का था, एफ० ए० तक पढा था, रेलवे में नौकर था, और माँ की प्रकृति से परिचित था। वह उसके जीते-जी विवाह न करना चाहता था। स्वभाव का बहुत शात, स्तब्ध और सहनशील था।

मा की अनुनय, विनय और प्रार्थना के उत्तर मे वह केवल चुप रह जाता, या धीरे-से हँस देता और काम मे लग जाता।

तीस वर्ष की उम्र मे यह बेटा पैदा हुआ था, और चालीस वर्ष की उम्र मे विधवा हो गई थी। अब मा की उम्र पचपन वर्ष की है। बेटे के प्रति जैसा स्निग्ध-प्रेम उसके हृदय के एक कोने मे विद्यमान है, दूसरे कोने म जगत् के प्रति वैसी ही क्रूरता, पशुता और भयानकता भरी हुई है।

काशीनाथ सब समझता था, और ब्याह के बाद के भयानक दृश्य देखता था। चुप रहता था, ब्याह न करता था और हँसी खुशी मा की सेवा करता था।

पर, एक बार, जब मा के बचने की आशा न रही, तो मजबूर होकर उसे झटपट ब्याह करना ही पडा।

कहना न होगा कि उम्मीद न रहने पर भी मा मरी नही, गरीब काशीनाथ का भविष्य गदा करने के लिए बच गई।

३

बहू आई, तो मा की सारी बीमारी काफूर हो चुकी थी। काखते-कूखते प्यार से घर मे लाई, रस्मे भुगताइ, प्यार की बातें की, गोद म लिटाया, मुह चूमा और पुराने वक्ता की अपनी परम प्रिय सोने की सिकडी मुह दिखाई म दी।

अबोध बहू ने सास के हृदय मे अतुलनीय स्नेह देखा और वह झट-झट अपनी मा को भूलने लगी।

पर द्विरागमन के बाद जब आई, तो स्पष्ट नीलाकाश मे धूमकेतु का आभास मिलने लगा। स्नेह पुराना पड रहा था। उत्तरदायित्व के भयानक परिश्रम का गट्ठर सामने ला रखा गया था, शासन-दण्ड अथवा साम-दण्ड हाथ मे सम्हाल लिया गया था और बडप्पन के रौब और गम्भीरता के के भार ने मिलकर सूरत मे, स्वर मे चेष्टा म भयानक परिवर्तन उपस्थित कर दिया था।

काशीनाथ ने यह परिवर्तन देखा तो काप उठा। रोज रात को घण्टो

पत्नी को तोते की तरह पढ़ाने लगा। 'लक्ष्मी-बहू', 'सास-बहू' 'आदर्श-बहू' ---और न जाने क्या-क्या---ढेर-की ढेर पुस्तकें ला पटकी, रोज सुबह उठते ही सास के पैर छूकर प्रणाम करने की आदत डाल दी, सास को खिलाकर खुद खाने का कठोर नियंत्रण कर दिया। रात को एक घण्टा सास के पैर दबाना अनिवार्य कर दिया।

और उस सुशीला, सुकुमारी नव वधू ने सिर झुकाकर खुशी खुशी यह सब-कुछ स्वीकार कर लिया।

बहू का 'लक्ष्मी पन,' 'देवी-पन' और 'सरस्वती-पन' और मेरी लाडो!' 'मेरी बच्ची!', 'मेरी बावली!'---सबोधन, तो द्विरागमन मे आने तक ही खत्म हो चुके थे। अब हठात उसम नये-नये दोषो के अन्वेषण की गुजाइश हो गई।

बहू जिद्दिन है। मेरे पैर दबाती है---खसम को खुश करने के लिए, मना करती हूँ, तो हटती नही।

बहू मुझे देख नही सकती। मुझे जलाने के लिए खाना कम खाती है और सूख-सूखकर खसम को मेरे खिलाफ उभाडना चाहती है।

बहू के चरित्र मे भी कुछ दोष मालूम पडता है। हमेशा बाप के घर जाने के लिए जिद करती है। कोई बाप के घर का आया कि उसके साथ चलने की इच्छा करने लगी।

बहू मुझसे जलती है। मुझसे बात करना पसन्द नही करती। दिन-भर वाहियात किताबें पढा करती है। जरा मैं सुनाने को कहती हूँ, तो इतनी जल्दी-जल्दी सुनाने लगती है कि कुछ समझ मे नही आता। धीरे पढने को कहती हूँ, एकदम इतना धीरे पढ़ने लगती है कि जी ऊब जाय।

बहू मुझे पगु, तिरस्कृता, काग उडानी, आश्रिता बनाकर रखना चाहती है। घर के काम म हाथ नही लगाने देती।

इन दोषो की खोज लगाकर सास अक्सर बीरो की माँ से, मक्खन की भाभी से, तुमसे, मुझसे विचार विनिमय करने लगी। और इस परामर्श के फलस्वरूप, अपना अस्तित्व कायम रखने और अन्य बहुओ और सासो के सामने एक उदाहरण या नजीर पेश करने के लिए बहू पर दमन करना स्थिर हुआ।

४

काशीनाथ सब सहता है। आखो मे आंसू भरे रहता है, और महीने म प द्रह दिन, दिन मे एक वक्त और कभी-कभी दोनो वक्त बेचारे को रोटी नसीब नही होती। चेहरा उसका पीला हो गया है और पत्नी बेचारी सूख-कर सीक-सी रह गई है। सारा आन द, सारा उत्साह, सारा सुख नष्ट हो गया है और दिन म, न-जाने कितनी बार पत्नी के या माँ के या अपने मर जान की कामना किया करता है।

दुनिया देखती है, पर बोलती नही। 'मामूली वात है', 'घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं', जहा चार बतन जुडते हैं, खडक्ते ही हैं'—इत्यादि उक्तियो-द्वारा दुनिया के लोग इस भयानक गृह-कलह के प्रति सामा य भाव से उपेक्षा प्रकट कर, अपने-अपने कामो मे लग जाते हैं।

पर, भावुक, गम्भीर, मन-ही-मन जलने वाले अभागे काशीनाथ के हृदय का हाल पढने की किसे फ़ुसत है ?

एक दिन अक्स्मात् सुना गया—काशीनाथ ने माँ को अलग कर दिया !

दुनिया के लागो की नीद इस सनसनीदार घटना से टूटी, और अनु स धान किया गया, तो पता लगा—आधी रात म बहू को लेकर काशीनाथ तन-तनहा जुदा हो गया है। माँ रात को जागी, तो बेटे-बहू दोनो गायब !

अब मा की हालत कोई देखता रोती, चीखती, चिल्लाती गली भर मे आई और हरेक परिचित को अपनी दु ख-गाथा सुना आई।

तीन दिन तक बटे-बहू का पता न लगा। चौथे दिन एक आदमी बारह रुपये लिए आया और मा से बोला—'काशीनाथ ने दिये हैं।'

'कसे ?'

मालूम हुआ, महीने का खच। हर महीने मिला करेगा।

५

पता उस आदमी से लग ही गया। दूर के एक मुहल्ले मे छ रुपय मासिक का मकान लिया है, खाट बिछौने, बतन भाडे नये खरीद है और अब मा की सूरत देखने का इच्छुक नही है।

तब माँ के रुदन का परिवर्द्धित कंठ-स्वर लोगों के कान में पडा और क्रोध से फुकारता हुआ, कुछ वयोवृद्ध और गण्य मान्य सज्जनों का दल एक जगह इकट्ठा हुआ। काशीनाथ को बुलाया गया। पञ्चायत का छोटा-मोटा सस्करण हुआ।

काशीनाथ आया, और साथ ही लोगों का रौब और उनकी ऐंठ दुचन्द हो गये।

दखो काशीनाथ'—एक वद्ध ने यथा-साध्य नम्र होकर कहा—'तुम पढे लिखे समझदार हो। जो नासमझ और मूख है, व अगर बहू के कह मे आकर माँ का तिरस्कार करें तो क्षम्य है '

काशीनाथ ने चिढकर बीच म कहा—'तो आप मुझे सबसे ज्यादा नासमझ और मूख समझकर क्षमा कीजिए।

तब, सुमई आखोवाले, मोटे-ताजे चन्दूलाल ने कहा—'अरे बेहया! तुझे शम नही आती? चल्लू भर पानी म डूब नही मरता? जिसने तुझे पाला, परवरिश की खुद गीले म सोकर तुझे सूखे मे सुलाया, खुद तकलीफ सहकर तुझे आराम पहुँचाया—उसे, तू इस तरह, काम निकल जाने पर छोडकर अलग हो गया

क्षोभ और अपमान से काशीनाथ का सिर नीचा हो गया, मुह स एक शब्द न निकल सका।

अब एक और सज्जन बोले— वाह री दुनियाँ! ब्याह करते ही पर निकल आए! अरे, तुझे कुछ तो शम आनी चाहिए थी? लुगाई हराम-जादी मे ऐसे लाल लग गए कि जरा नही दबाई जा सकती! क्यो? लानत है ऐसी मर्दूमी पर। देख हमारा भतीजा रामचन्द है उसकी बहू ने कहा—'अलग हो जायें!' तो बोला—'अपने बच्चे को लेकर तू अलग हो जा मेरी माँ का बच्चा उसके साथ रहेगा। समझा? यह है असली मर्दों की बात! क्या तेरे हाथ मे दम नही, जो औरत नही दबती?

स्तब्ध और सहनशील काशीनाथ क्रोध से अधीर हो उठा। क्षुब्ध स्वर म बोला—'हमारे घर की लडाई '

अरे यह तो मामूली बात है जहाँ दो बतन होगे खडकेंगे ही!'

' माँ का स्वभाव '

'यही तो आजकल के नौजवानो की भूत है। अरे, कही एक हाथ ताली बजती है ?

काशीनाथ जानता है कि सचमुच एक ही हाथ ताली बजी थी। पर समझाय कैसे ?

बाला—'देखिए साहब, मैंने सारा जेवर-रुपया, कपडा लत्ता छोड दिया घर भी छोड दिया, और उसके खर्च के लिए जो कुछ बनता है, देता हूँ—आप लोग मुझे माफ करें। मैं पास उसे रख नही सकता। हमारा निर्वाह अब हो नही सकता ।'

कई सज्जन एक साथ गरज उठे—'अरे पापिष्ठ! यह क्या तूने दाल-भात का कौर समझा है? अरे, सब तो उस बेचारी न तेरी पढाई लिखाई ब्याह-शादी मे खर्च कर दिया अब उसके पास बचा क्या है! अरे नीच, उस बेचारी विधवा को यो धोखा देकर क्या तू आसानी से बच जायेगा? याद रख अब हम लोग मर नही गये हैं।'

उस पहले वाले वयोवृद्ध सज्जन ने नम्र होकर कहा—'देखा बेटा, तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं हुआ। तुम्हारी माँ को हमने समझा लिया है। जरा दोनो को समझाते रहो। वह बहू भी अभी बच्ची है। बुढिया अगर तुम लोगो को कुछ तकलीफ देती है तो आराम भी देती ही है। अब की बार तो हमारा कहना मानकर उसे रख लो। देखो, तुम बडे समझदार ।'

काशीनाथ को आत्म-समर्पण करना ही पडा।

६

मा फिर आ गई है। सारे क्षोभ अपमान, लाछना को पीकर काशीनाथ उसे ले आया है। ले तो आया है पर दुनिया के लोगो के प्रति उसका मन भयानक घृणा से भर रहा है। जब मा को लेने गया था, तो उनमे से कई आदमी उसे मिले, जिन्होने पचायत मे जो जी चाहा, बका था। उन्होंने अब हँसकर बोलना चाहा। काशीनाथ ने झिडक दिया और मा को लेकर सीधा घर आ गया।

इस माड़े में समय ने और दुनियाँ के अन्धेपन ने काशीनाथ को कुछ-को-कुछ बना दिया है। अब वह जीते-जी माँ का न छोड़ेगा, पर बरदाश्त भी न करेगा, [illegible] का पक्ष भी लगा और समय आने पर माँ की खबर भी [illegible]।

माँ इस परिवर्तन की बात नहीं जानती। वह तो गर्व और अभिमान से फूल रही है। आखिर जीत उसी की रही। दबना कैसा अब तो वह खूब दमन करेगी खूब दबायेगी और खूब शान से शासन करेगी।

काशीनाथ दुनिया के अन्धेपन से लाभ उठाने का प्रण कर चुका है। और मन-ही-मन एक बीभत्स संकल्प भी कर चुका है। न सहेगा न चुप रहेगा न रोटी छोड़ेगा और लड़ाई न होगी तो छेड़कर लड़ाई करेगा।

छेड़कर करने की नौबत न आई। उस दिन बात-ब-बात की लड़ाई शुरू हो गई। वही किताब पढ़ने का मामला। बहू मन-ही मन पढ़ रही थी। सुनाने का प्रस्ताव हुआ। पहले जल्दी-जल्दी पढ़ने की शिकायत हुई, फिर समझा-समझाकर पढ़ने की आज्ञा हुई, फिर बेहद धीरे-धीरे पढ़ने का अभियोग लगा।

और इस अभियोग के साथ ही-साथ सास महाशया ने क्रोध से बिल-बिलाकर दाँत पीसकर आँख काढ़कर बहू का सिर दीवार से टकरा दिया।।

सिर फूट गया और रक्त बहने लगा।

शाम को बेटा लौटा तो माँ सिर पीट पीटकर कहने लगी—'क्या इसीलिए मुझे बुलाकर लाया था? इसीलिए—जला-जलाकर मारने? देख तेरी बेगम ने यह क्या किया है? जरा सी बात पर सिर फोड़ लिया। अरे बाबा रे यह छलछन्दिन तो मुझे किसी दिन फाँसी पर लटकवा देगी। वाह बेटा वाह! अच्छी मेरी खातिरदारी की।।'

माँ भयानक मुँह बनाकर सिर हिलाने लगी।

ऊपर जाकर उसने बहू से पूछा। रोते रोते सच-सच सब बता दिया गया और जख्म और खून भी दिखा दिया गया।

तब बेटे ने शान्त भाव से कोट उतारकर खूँटी पर टाँगा दायें हाथ से कोने में रखा हुआ मजबूत बेंत उठाकर बाईं हथेली पर दो-तीन बार

पटका और धीरे धीरे नीचे आकर भीतर म किवाड़ ब द कर लिये।

ब्रटे की उग्र मूर्ति देखकर माँ चीख पड़ी ।

वह चीख जबदस्ती दबा दी गई और हाथ थक आने तक काशीनाथ का पशुत्व भाव अनय करता रहा।

एक सप्ताह तक माँ घर से न निकली, निकलने ही न दी गई। जब मार के चिह्न मिट गये तो स्वतन्त्रता मिली।

छूटते ही पहुँची मुरलिया के पास और रोई जाकर दुखड़ा। खूब हाय-तोबा मचाई, धरना दिया और हाथ जोड़-जाड़कर विनती की।

एक सप्ताह तक रोज सुबह जाती, शाम को आती, पर कुछ फल न हुआ। न पचायत जुड़ी न काशीनाथ से जवाब तलब किया गया।

'अन्धी दुनिया' ने वही वतन खडकनेवाली बात कहकर माँ का अभियोग डिसमिस कर दिया।।

□□□